अस्वाध्यायिक

निम्नलिखित बत्तीस अस्वाध्याय के कारणों को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए।

आकाश संबंधी 10 अस्वाध्याय

क्र.	नाम	आकाश संबंधी 10 अस्वाध्याय	काल मर्यादा
1.	उल्कापात	'टूटता हुआ तारा, पीछे रेखायुक्त प्रकाश'	एक प्रहर
2.	दिग्दाह	दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग सी लगी है	एक प्रहर
3.	गर्जित	अकाल में मेघ गर्जना हो तो	दो प्रहर
4.	विद्युत	अकाल में बिजली चमके तो	एक प्रहर
5.	निर्घात	बिजली कड़के तो	आठ प्रहर
6.	यूपक	शुक्ल पक्ष की 1-2-3 की रात (पक्खी के बाद की तीन रात्रियाँ समझना)	प्रहर रात्रि तक
7.	यक्षादीप्त	आकाश में एक दिशा में रूक-रूक के देवता कृत विद्युत के समान प्रकाश होना।	जब तक दिखाई दे
8-9.	धूमिका-मिहिका	काली और सफेद धूँअर	जब तक रहे
10.	रज उद्घात	आकाश मण्डल धूली से आच्छादित	जब तक रहे

नक्षत्र 28 होते हैं, उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक 9 नक्षत्र वर्षा के गिने गए हैं। इनमें होने वाली मेघ गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अत: इसका अस्वाध्याय काल नहीं गिना गया है।

(श्री स्थानांगसूत्र, स्थान 10, उ.1)

औदारिक सम्बन्धी अस्वाध्यायिक

11-13.	हड्डी, रक्त मांस	ये तिर्यंच के 60 हाथ के भीतर हो तो	3 प्रहर
		मनुष्य के 100 हाथ के भीतर हो तो	8 प्रहर
		मनुष्य की हड्डी 100 हाथ के भीतर यदि जली या धुली न हो तो	12 वर्ष तक

(आवश्यक निर्युक्ति पृष्ठ 217)

14.	अशुचि	दुर्गंध आवे या दिखाई दे	तब तक
15.	श्मशान भूमि	100 हाथ के भीतर हो तो	स्वाध्याय नहीं करें

16.	चंद्र ग्रहण	खंड ग्रहण, पूर्ण ग्रहण हो तो क्रमशः	8 प्रहर, 12 प्रहर
17.	सूर्य ग्रहण	खंड ग्रहण, पूर्ण ग्रहण हो तो क्रमशः	12 प्रहर, 16 प्रहर
18.	पतन	राजा या राज्याधिकारी के निधन होने पर जब तक विक्षोभ रहे	तब तक
19.	राजव्युद्ग्रह	युद्ध स्थान के निकट	युद्धजनित क्षोभ रहे तब तक
20.	शव	पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो	जब तक रहे
21-24. चार महापूर्णिमा		1. आषाढ़ी पूर्णिमा, 2. अश्विनी पूर्णिमा	दिन-रात
		3. कार्तिकी पूर्णिमा, 4. चैत्र की पूर्णिमा	दिन-रात
*25-28. चार प्रतिपदा		इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा	दिन-रात
29-32. संधि समय-		सूर्योदय-सूर्यास्त के पूर्व व पश्चात् आधा-आधा मुहूर्त संधि समय-मध्यान्न और मध्यरात्रि 1-1 मुहूर्त	

विशेष नोट-

- बालक-बालिका के जन्म के क्रमशः सात और आठ दिन तक 100 हाथ के भीतर अस्वाध्याय माना जाता है।
- गायादि के जर गिरती रहे तब तक, उसके गिरने के बाद तीन प्रहर तक।
- **कालिक सूत्र**-11 अंग, 4 छेद तथा मूलसूत्र में एक उत्तराध्ययन सूत्र। उपांग सूत्र में जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति, निरयावलिया पंचक (निरयावलिया, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, पुप्फचुलिया, वण्हिदसा)। शेष सभी उत्कालिक सूत्र हैं। किन्तु 32वां आवश्यक सूत्र नोकालिक नोउत्कालिक सूत्र है।

  कालिक सूत्र का स्वाध्याय दिन एवं रात्रि के प्रथम एवं अंतिम प्रहर में एवं उत्कालिक सूत्र का स्वाध्याय किसी भी समय अस्वाध्याय के कारणों को टालकर करना चाहिए। उत्काल में कालिक सूत्र की वाचना 9 गाथा से अधिक नहीं दी जा सकती।
- स्वाध्याय का वाचन करने के पश्चात् 'आगमे तिविहे' का पाठ बोलें।
- एक प्रहर लगभग 3 घंटे का होता है।
- आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र का काल तारीख के हिसाब से 21 जून से 25 अक्टूबर के लगभग होता है।

- चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण जिस क्षेत्र में दिखे वहां अस्वाध्यायिक समझना।
- पका हुआ मांस अस्वाध्यायिक नहीं है।
- यदि 2 पूर्णिमा हो तो पूर्णिमा को अस्वाध्याय मानना प्रतिपदा को नहीं। यदि प्रतिपदा दो हो तो प्रथम प्रतिपदा और पूर्णिमा को अस्वाध्यायिक मानना। यदि पूर्णिमा क्षय हो तो चतुर्दशी और प्रतिपदा को अस्वाध्यायिक मानना। यदि प्रतिपदा क्षय हुई हो तो चतुर्दशी पूर्णिमा को अस्वाध्यायिक मानना।
- प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, राज्यपाल, मुख्यमंत्री के कालगत हो जाने पर जिस क्षेत्र में, वातावरण में जब तक विक्षोभ रहे तब तक अस्वाध्यायिक होता है।

सूत्र विभाग

वीर स्तुति (वीरत्थुइ)

जैन धर्म, दर्शन की विशेष निधि आगम शास्त्र है। द्वादशांगी में सूत्रकृतांग सूत्र का दूसरा स्थान है। इस आगम में भगवान महावीर द्वारा 363 मतावलम्बियों का सटीक खण्डन कर शुद्ध धर्म का निरुपण किया गया है। इसी आगम का छठा अध्ययन वीरस्तुति (वीरत्थुइ) है। भगवान महावीर के बारे में पूछे जाने पर आर्य सुधर्मा स्वामी ने भगवान महावीर के श्रेष्ठ एवं अनुत्तर गुणों तथा उनकी अद्वितीय महिमा का इस अध्ययन में वर्णन किया है।

इस स्तुति में भगवान महावीर की दिव्य श्रेष्ठता को संसार की श्रेष्ठतम वस्तुओं से उपमित कर आदर्श जीवन को भव्य रूप से चित्रित किया गया है।

स्तुति के माध्यम से भगवान महावीर के आदर्श जीवन का स्मरण करके साधक आत्मबल प्राप्त करता है तथा उन्होंने जिस प्रकार कर्मरिपुओं पर विजय पाई थी उसी प्रकार विजय पाने का प्रयत्न करता है। प्रभु महावीर द्वारा प्ररुपित श्रुत चारित्र रूप धर्म का श्रवण, श्रद्धान एवं आचरण करने वाला साधक सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो जाता है अथवा कुछ कर्मों के शेष रहने पर वैमानिक देव अथवा इन्द्र बनता है।

1. पुच्छिंस्सु णं (वीर स्तुति)

पुच्छिंस्सु णं समणा माहणा य,
अगारिणो या परतित्थया य।
से के इणेगंतहियं धम्म-माहु
अणेलिसं साहु समिक्खयाए॥१॥

अन्वयार्थ- समणा=श्रमणों, **य माहणा**=और ब्राह्मणों, **अगारिणो**=गृहस्थों, **परतित्थया य**=और परतीर्थिकों ने, **पुच्छिंस्सु**=पूछा कि, **से के**=वह कौन है, **इणेगंतहियं**=एकान्त हितकर, **अणेलिसं साहु**=अनुपम श्रेष्ठ, **धम्मं**=धर्म को, **समिक्खयाए**=सम्यक् प्रकार से विचार कर, **आहु**=कहा।

भावार्थ- श्रमण, ब्राह्मण, क्षत्रियादि गृहस्थ और शाक्य आदि अन्य

मतावलम्बी लोगों ने पूछा कि वे कौन है जिसने एकान्त रूप से आचरण योग्य हितकर श्रुत चरित्र रूप अनुपम श्रेष्ठ धर्म का कथन सम्यक् रूपेण किया।

कहं च णाणं कहं दंसणं से,
सीलं कहं णायसुयस्स आसी।
जाणासि णं भिक्खु! जहा तहेणं,
अहासुयं बूहि जहा णिसंतं॥२॥

अन्वयार्थ-से णायसुयस्स=उस ज्ञात पुत्र का, **णाणं**=ज्ञान कैसा था? **कहं दंसणं**=दर्शन कैसा था? **सीलं कहं आसी**=यम नियम रूप आचरण कैसा था? **भिक्खु**=हे भिक्षु, **जहा तहेणं जाणासि**=जैसा उनको जानते हो, **अहासुयं**=जैसा सुना है, **जहा णिसंतं**=जैसा निश्चय किया, **बूहि**=कहिये।

भावार्थ- हे गुरुवर्य! क्षत्रिय कुल आभूषण श्रमण भगवान महावीर स्वामी का वस्तु के विशेष धर्मों को जानने का बोध ज्ञान कैसा था? सामान्य धर्मों को जानने वाला उपयोग दर्शन कैसा था? उनका यम नियम रूप शील कैसा था? हे भगवन्! यह आप यथार्थ रूप में जानते हो, उनके बारे में जैसा सुना हो, अथवा गुरुकुल में रहते आपने जैसा देखा हो, उसे अनुग्रह कर मुझे कहिए।

खेयण्णए से कुसले महेसी,
अणंत णाणी य अणंत दंसी।
जसंसिणो (जसन्-सिणो) चक्खु पहेठियस्स,
जाणाहि धम्मं च धिइं च पेहि॥३॥

अन्वयार्थ- से खेयन्नए=वे संसार के दुःखों को जानने वाले थे, **कुसले महेसी**=निपुण महर्षि थे, **अणंतणाणी य अणंत दंसी**=अनन्त ज्ञानी और अनन्त दर्शी थे, **जसंसिणो**=यशस्वी, **चक्खु पहे ठियस्स**=लोचन मार्ग पर स्थित, **धम्मं जाणाहि**=धर्म को जानो, **धिइं च पेहि**=और धैर्य को देखो-विचारो।

भावार्थ- श्रमण भगवान महावीर स्वामी कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न होने एवं चतुर्गति संसार परिभ्रमण के दुःखों को जानने वाले थे तथा कर्मों को हटाने, निवारण के उपदेश में निष्णात थे। तपश्चरण करने एवं परीषहोपसर्गों को सहने से महर्षि थे। वे अविनाशी ज्ञानवान् थे, अनंतदर्शी थे, नरेन्द्रों,

देवेन्द्रों और असुरेन्द्रों से बढ़कर यशस्वी थे, भवस्थ केवली अवस्था में लोक के चक्षु पथ पर स्थित थे। उनके श्रुत एवं चारित्र धर्म को जानो एवं उनके धैर्य को देखो।

उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु,
तसा य जे थावर जे य पाणा।
से णिच्चणिच्चेहिं समिक्ख पण्णे
दीवेव धम्मं समियं उदाहु॥४॥

अन्यवार्थ- उड्ढ अहेयं तिरियं=ऊपर, नीचे, तिरछे, **दिसासु**=दिशाओं में, **तसा य जे**=जो त्रस और, **थावर जे य पाणा**=स्थावर जो प्राणी रहते हैं, **णिच्चणिच्चेहिं**=नित्य और अनित्य से, **सम्मिक्ख**=सम्यक् प्रकार से जानकर, **से पन्ने**=उन प्रज्ञा पुरुष ने, **दीवेव**=दीपक वत्, **समियं**=समतामय, **धम्मं**=धर्म का, **उदाहु**=कथन किया है।

भावार्थ- उर्ध्व, अधः और तिरछी दिशाओं में जो भी त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उनकी नित्य और अनित्य उभय अवस्थाओं को सम्यक्तया जानकर पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करने से दीपक सदृश थे। संसार में डूबते हुए समस्त प्राणियों के लिए द्वीप के समान रक्षक थे। उन्होंने श्रुत और चारित्र धर्म की प्ररूपणा समभाव से की।

से सव्वदंसी अभिभूय णाणी
णिराम गंधे धिइमं ठियप्पा।
अणुत्तरे सव्वजगंसि विज्जं
गंथा अइए अभए अणाऊ॥५॥

अन्वयार्थ- से सव्वदंसी=वह सर्वदर्शी, **अभिभूय णाणी**=अपराजेय ज्ञान वाले, **णिराम गंधे**=मूल गुण और उत्तर गुण की विशुद्ध पालना करने वाले, **धिइमं**=धैर्यवान, **ठियप्पा**=आत्म स्वरूप में रहने वाले, **सव्वजगंसि**=अखिल विश्व में, **अणुत्तरे विज्जं**=सर्वोत्तम विद्वान, **गंथा अइए**=ग्रन्थियों से रहित, **अभए**=निर्भय, **अणाउ**=आयु से रहित।

भावार्थ- श्रमण भगवान महावीर सर्वदर्शी, केवलज्ञानी थे, मूलगुणों और उत्तर गुणों के विशुद्ध पालक थे, परम धैर्यवान् आत्म स्वरूप में रमण करने वाले थे। अखिल विश्व में सर्वोत्तम ज्ञानी तथा बाह्य आभ्यन्तर ग्रन्थियों

से रहित थे, समग्र भयों से रहित और चतुर्विध आयु से विमुक्त थे।

से भूइपण्णे अणिए आचारी,

ओहंतरे धीरे अणंत चक्खू।

अणुत्तरं तप्पइ सूरिए वा,

वइ रोयणिंदे व तमं पगासे॥६॥

अन्वयार्थ- **से भूइपण्णे**=वे अनन्त ज्ञानी, अणिए **आचारी**=इच्छानुसार विचरण करने वाले, **ओहंतरे**=संसार से तिरने वाले, **धीरे**=धैर्यवंत, **अणंत चक्खू**=अनन्त दर्शनवान्, **सूरिए व**=सूर्य की तरह, **अणुत्तरं**=सर्वाधिक, **तप्पई**=तपता है, **वइ रोयणिन्दे व**=अग्नि सदृश, **तमं पगासे**=अन्धकार से प्रकाश करने वाले हैं।

भावार्थ- श्री महावीर स्वामी अनन्त ज्ञानी, अप्रतिबद्ध विहारी, संसार सागर से तिरने वाले, धैर्यवान, अनन्त दर्शनधारी, सूर्य के समान प्रकाशवान हो तप रहे थे। वे अग्नि के समान अज्ञान अन्धकार को नष्ट कर पदार्थों को यथार्थ रूप में प्रकाशित करते थे।

अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं

णेया मुणी कासव आसुपण्णे

इंदेव देवाण महाणुभावे

सहस्स णेया दिविणं विसिट्ठे॥७॥

अन्वयार्थ- **आसुपण्णे**=शीघ्र बुद्धि वाले, **कासव**=काश्यप गोत्रिय, **मुणी**=मुनि, **जिणाणं**=जिनवरों के, **इणं अणुत्तरं**=इस सर्वश्रेष्ठ, **धम्मं णेया**=धर्म के प्रणेता है, **दिविणं**=स्वर्गलोक में, **सहस्स देवाणं**=हजारों देवताओं का, **इंदेव**=इन्द्र नेता है, **महाणुभावे विसिट्ठे**=महान् प्रभावशाली है।

भावार्थ- शीघ्र पारगामी तीक्ष्ण बुद्धि वाले, काश्यप गौत्रवान् मुनि श्री वर्धमान स्वामी ऋषभादि जिनेश्वर भगवंतों के इस सर्वश्रेष्ठ धर्म के प्रणेता है। जिस तरह देवलोक में हजारों देवताओं का नेता इंद्र महान प्रभावशाली होता है उसी प्रकार भगवान महावीर त्रिलोक में सर्वोत्तम श्रेष्ठ, अद्वितीय महाप्रभावक हैं।

से पण्णया अक्खय सागरे वा,

महोदही वावि अणंत पारे

अणाइले वा अकसाइ मुक्के
सक्केव देवाहिवई जुइमं॥८॥

अन्वयार्थ- से सागरे वा=वे श्रमण भगवान महावीर समुद्र सदृश, **पण्णया-अक्खय**=प्रज्ञा से अक्षय, **महोदही वावि**=स्वयंभूरमण समुद्रवत्, **अणंत पारे**=असीम सामर्थ्यवान, **अणाइले वा**=निर्मल मतिमान, **अकसाइ**=कषाय से रहित, **मुक्के**=संयोगों से विमुक्त, **सक्केव**=शकेन्द्र की तरह, **देवाहिवई**=देव के अधिपति, जुइमं=अत्यन्त तेजस्वी है।

भावार्थ- भगवान महावीर प्रज्ञा से समुद्र के समान अक्षय हैं, स्वयंभू रमण समुद्र सदृश अपार अप्रतिहत प्रज्ञानिधि हैं, वे प्रज्ञा से अत्यन्त निर्मल, निष्कषाय और द्रव्य और भाव संयोगों से सर्वथा विनिर्मुक्त और देवों के अधिपति इन्द्र सम अत्यन्त तेजस्वी हैं।

से वीरिएणं पडिपुण्ण वीरिए
सुदंसणे वा णग सव्व सेट्ठे।
सुरालए वासि मुदागरे से,
विरायए णेग गुणोववेए॥९॥

अन्वयार्थ- से=वे वर्धमान स्वामी, **वीरिएणं**=आत्म बल से, **पडिपुण्ण**=पूर्ण शक्ति सम्पन्न, **सुदंसणे वा**=जिस प्रकार सुमेरु, **णग-सव्व-सेट्ठे**=सब पर्वतों में श्रेष्ठ, **सुरालये**=देवलोक में, **वासि**=रहने वाले को, **मुदागरे**=हर्षित करने वाले, **णेग गुणो-ववेए**=अनेक गुणों से युक्त होकर, **विरायए**=सुशोभित होता है।

भावार्थ- वीर्यान्तराय कर्म का समूल उच्छेद करने से श्री वर्धमान स्वामी आत्मबल से परिपूर्ण शक्ति सम्पन्न हैं, जैसे सब पर्वतों में सुमेरु पर्वत प्रधान है, उसी प्रकार आत्मशक्ति से तथा अन्य गुणों से भगवान सर्वश्रेष्ठ हैं। जैसे देवलोक में रहने वालों को देवलोक हर्षजनक है वैसे ही वीर जिनेश्वर अनेक गुणों से सम्पन्न होने से अखिल विश्व को अपने गुणों से आनन्द देने वाले हैं, अच्छे प्रीतिकर लगते हैं।

सयं सहस्साण उ जोयणाणं,
तिकंडगे पंडग वेजयंते।
से जोयणे णव णवइ सहस्से,

उद्धुस्सितो हेट्ठ सहस्समेगं॥१०॥

अन्वयार्थ- सयं सहस्साण=सौ हजार, **उ जोयणाणं**=योजन की ऊँचाई वाला है, **तिकंडगे**=तीन विभाग है, **पंडग वेजयंते**=पण्डक वन ध्वजा के समान है, **से**=वह सुमेरु पर्वत, **णव-णवइ सहस्से**=निन्यानवें हजार, **जोयणे**=योजन, **उद्धुस्सितो**=ऊपर की ओर ऊँचा, **सहस्सं एगं हेट्ठ**=एक हजार योजन नीचे भूमि भाग में है।

भावार्थ- वह सुमेरु पर्वत एक लाख योजन ऊँचा है, इसके भौम, जम्बूनद और वैडुर्य ये तीन विभाग हैं, वहाँ पताका रूप में पण्डक वन है, वह सुमेरु पर्वत निन्यानवें हजार योजन पृथ्वी के ऊपर और एक हजार योजन पृथ्वी के अधोभाग में हैं। ऐसा सुमेरु पर्वत सब पर्वतों में प्रधान- श्रेष्ठ है।

पुट्ठे णभे चिट्ठइ भूमि वट्ठिए,
जं सूरिया अणुपरिवट्टयंति।
से हेम वण्णे बहु णंदणे य,
जंसि रइं वेदयइ महिंदा॥११॥

अन्वयार्थ- से पुट्ठे नभे=वह स्पर्श किया हुआ आकाश को, भूमि **वट्ठि**=पृथ्वी पर स्थित, **चिट्ठइ**=रहता है, **जं सूरिया**=जिस मेरु को सूर्य, **परिवट्टयंति**=परिक्रमा करते हैं, **हेम वण्णे**=सुवर्ण वर्ण वाला, **बहु णंदणे य**=अनेक नंदन वन से युक्त **जंसि**=जिस मेरु पर, **महिंदा**=महेन्द्र देव, **रइं वेदयइ**=रति का अनुभव करते हैं।

भावार्थ- वह सुमेरु पर्वत आकाश को छूता हुआ भूमि के अन्दर रहा हुआ है, सूर्य आदि ज्योतिष उसकी परिक्रमा करते हैं, वह स्वर्ण वर्ण वाला अनेक उद्यानों से युक्त है। महेन्द्र देव वहाँ आकर रमण का आनन्द लेते हैं। भूमि पर भद्रशाल वन है, उससे पाँच सौ योजन ऊँचाई पर मेखला की जगह नन्दन वन, उससे 62,500 (साढ़े बासठ हजार) योजन ऊँचाई पर सौमनस वन और उससे 36,000 (छत्तीस हजार) योजन के शिखर पर पण्डक वन है।

से पव्वए सद्द महप्पगासे,
विरायइ कंचण-मट्ठ-वण्णे।
अणुत्तरे गिरिसु य पव्व दुग्गे
गिरिवरे से जलिए व भोमे॥१२॥

अन्वयार्थ- से पव्वए=वह पर्वत, **सद्द महप्पगासे**=शब्द महाप्रकाश नामों से सुप्रसिद्ध है, **कंचणं अट्ठवण्णे**=कंचन के सदृश शुद्ध वर्ण वाला, **अणुत्तरे**=सर्वश्रेष्ठ रूप में, **विरायइ**=सुशोभायमान है, **गिरिसु**=पर्वतो में, **य पव्व दुग्गे**=और पर्वतों से दुर्गम, **से गिरिवरे**=वह गिरिराज, **भोमेव जलिए**=भू प्रदेश जैसा प्रकाशित रहता है।

भावार्थ- वह सुमेरु पर्वत शब्दों से महान् प्रकाश वाला है, सुवर्ण के सदृश वर्ण वाला है, सर्वोत्तम श्रेष्ठता से सुशोभित है, वह सब पर्वतों के मध्य में मेखलादि के कारण दुर्गम है, वह मणियों और औषधियों से देदीप्यान होने से भू-भाग की तरह प्रकाशमान है।

महीए मज्झम्मि ठिए णगिंदे,
पण्णायते सूरिए सुद्ध लेसे।
एवं सिरीए उ स भूरि वण्णे
मणोरमे जोयइ अच्चिमाली॥१३॥

अन्वयार्थ- णगिंदे=वह पर्वताधिराज सुमेरु, **महीए मज्झम्मि ठिए**=पृथ्वी के मध्य में स्थित है, **सुरिए सुद्ध लेसे**=सूर्यवत् शुद्धकांति वाला, **पण्णायते**=प्रतीत होता है, **एवं सिरीए**=इसी प्रकार वह अपनी सम्पदा से, **भूरि वण्णे**=अनेक वर्ण वाला, **मणोरमे**=मनोहर, **अच्चिमाली**=सूर्य सा, **जोयइ**=सब दिशाओं को प्रकाशित करता है।

भावार्थ- वह पर्वतराज सुमेरु पृथ्वी के मध्य में रहा हुआ है, सूर्य के समान शुद्ध वर्ण वाला मालूम होता है, इस प्रकार वह अपनी सम्पदा-श्री से विविध वर्णमय एवं मनोहर है, सूर्य की तरह अपने तेज से दसों दिशाओं को प्रकाशित करता है

सुदंसणस्सेव जसो गिरिस्स,
पवुच्चई महतो पव्वयस्स।
एतोवमे समणे णायपुत्ते,
जाइ जसो दंसण णाण सीले॥१४॥

अन्वयार्थ- महतो पव्वयस्स=महान सुमेरु पर्वत का, **सुदंसणस्स गिरिस्स**=सुदर्शन गिरि का, **जसो पवुच्चई**=यश कहा जाता है, **इव**=इसी तरह, **समणे णाय-पुत्ते एतोवमे**=ज्ञात पुत्र श्रमण भगवान महावीर को इसी

की उपमा दी जाती है, **जाइ जसो दंसण णाण सीले**-जाति, यश, दर्शन, ज्ञान और शील से श्रेष्ठ है।

भावार्थ- उस महान् पर्वत सुदर्शन गिरि का यश पूर्वोक्त प्रकार से कहा गया है, उसी के समान ज्ञातपुत्र श्रमण महावीर हैं। वे वीर भगवान जाति से महान्, यश में अद्वितीय, दर्शन में अनुपमेय, ज्ञान में अनुत्तर और शील में सर्वोत्तम है। सर्वप्रधान उपमा देने की दृष्टि से ही यहाँ सुमेरु का परिचय दिया गया है।

गिरिवरे वा निसहाययाणं,
रुयए व सेट्ठे वलयायताणं
तओवमे से जग भूइ पण्णे,
मुणीण मज्झे तमुदाहु पण्णे॥१५॥

अन्वयार्थ- **आयाणं**=लम्बे आकार वाले, **गिरिवरे**=पर्वतों में श्रेष्ठ, **निसह व**=निषध प्रधान है, **वलयायताणं**=वर्तुल पर्वतो में, **रुयए व**=जैसा रुचक पर्वत, **सेट्ठे**=श्रेष्ठ है, **जगभूइ पण्णे**=संसार में अधिक बुद्धिमान को, **तओवमे**=वही उपमा है, **पण्णे**=बुद्धिमान, **मुणीण मज्झे**=मुनियों के मध्य में, **तमुदाहु**=भगवान महावीर को श्रेष्ठ कहते हैं।

भावार्थ- जैसे दीर्घ आकार वाले पर्वतों में गिरिराज निषध प्रधान है, अथवा गोलाकार पर्वतों में रुचक पर्वत श्रेष्ठ है, उसी तरह संसार के समस्त ज्ञानवान मुनियों में सर्वोत्तम प्रज्ञावान भगवान महावीर स्वामी हैं, ऐसा बुद्धिमान पुरुषों ने कहा है।

अणुत्तरं धम्म-मुई रइत्ता
अणुत्तरं झाण वरं झियाइं
सुसुक्क सुक्कं अपगंड सुक्कं
संखिन्दु-एगंतवदात-सुक्कं॥१६॥

अन्वयार्थ- **अणुत्तरं धम्म-मुई रइत्ता**=सर्वोत्तम श्रुत-चरित्र धर्म को कहकर, **अणुत्तरं झाण वरं झियाइं**=सर्वोत्तम श्रेष्ठ ध्यान ध्याते थे, **सुसुक्क सुक्कं**=श्रेष्ठ शुक्ल वस्तुवत् शुक्ल था, **अपगंड सुक्कं**=दोष रहित शुक्ल था, **संखिन्दु**=शंख और चन्द्रमा वत्, **एगंतवदात सुक्कं**=एकान्त रूप से विशुद्ध शुक्ल।

भावार्थ- ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर सर्वोत्तम श्रेष्ठ, श्रुत और चारित्र धर्म का निरूपण करके अनुत्तर ध्यान करते थे। उनका ध्यान अतीव शुक्ल वस्तु के समान शुक्ल, निर्दोष तथा शंख अथवा चन्द्रमा के सदृश सर्वथा स्वच्छ और शुद्ध होता था।

अणुत्तरग्गं परमं महेसी
असेस कम्मं स विसोहइत्ता।
सिद्धिं गइं साइ-मणंतपत्ते,
णाणेण सीलेण य दंसणेण॥१७॥

अन्वयार्थ- **स महेसी**=वे महर्षि, **नाणेण सीलेण य दसंणेण**=ज्ञान, चरित्र और दर्शन से, **असेस कम्मं**=सम्पूर्ण कर्मों को, **विसोहइत्ता**=शोधन करके, **अणुत्तरग्गं**=सर्वोत्तम अग्र, **परमं सिद्धि**=प्रधानसिद्ध, **गई**=गति को प्राप्त हुए, **साइ-मणंत पत्ते**=जिसका आदि है, अन्त नहीं।

भावार्थ- महर्षि वीर जिनेश्वर ने ज्ञान, शील और दर्शन के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का विशोधन-क्षय करके सर्वोत्तम श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त की, जिसकी आदि तो है, अन्त नहीं है।

रुक्खेसु णाए जह सामली वा
जंसि रइं वेदयइ सुवण्णा
वणेसु वा णंदण माहु सेट्ठं,
णाणेण सीलेण य भूइपण्णे॥१८॥

अन्वयार्थ- **जह**=जैसे, **रूक्खेसु णाए**=वृक्षों में जगत्प्रसिद्ध, **सामली वा**=सेमल वृक्ष है, **जंसि**=जिस पर, **सुवण्णा**=सुपर्ण (भवनपति विशेष), **रइं वेदयइ**=आनन्द का अनुभव करते हैं, **वणेसु वा णंदण सेट्ठं माहु**=वनों में सर्वश्रेष्ठ नन्दन वन कहा है, **णाणेण सीलेण य भूइ पण्णे**=ज्ञान और चरित्र से सर्वोत्तम श्रेष्ठ महावीर स्वामी को कहते हैं।

भावार्थ- जैसे वृक्षों में देवकुरु क्षेत्र में रहा शाल्मली वृक्ष सर्वश्रेष्ठता के रूप में प्रसिद्ध है, उन पर भवनपति देव सुपर्णकुमार आनन्द लेते हैं अथवा सम्पूर्ण वनों में नन्दन वन सर्वोत्तम देवों का क्रीड़ा स्थल है, उसी प्रकार जीवरक्षा की प्रमुख प्रज्ञा वाले भगवान महावीर ज्ञान, शील में सर्वोत्तम कहे जाते हैं।

थणियं व सद्दाण अणुत्तरे उ
चंदोव ताराण महाणुभावे
गंधेसु वा चंदण माहु सेट्ठं
एवं मुणीणं अपडिण्ण माहु॥१९॥

अन्वयार्थ- **सद्दाण**=शब्दों में, **थणियं**=मेघ गर्जन, **अणुत्तरे**=प्रधान है और, **ताराणं**=ताराओं में, **महाणुभावे चंदो**=महा प्रभावी चन्द्रमा श्रेष्ठ है, तथा **गंधेसु वा चन्दण सेट्ठं माहु**=गंधों में चन्दन गन्ध श्रेष्ठ है, **एवं**=इसी प्रकार, **मुणीणं**=मुनियों में, **अपडिण्णमाहु**=कामना विमुक्त भगवान महावीर श्रेष्ठ कहे जाते हैं।

भावार्थ- सम्पूर्ण शब्दों में मेघगर्जन श्रेष्ठ है, समस्त नक्षत्रों में प्रकाश वाला चन्द्रमा प्रधान और गन्ध वाले पदार्थों में गोशीर्ष चन्दन प्रधान है, उसी प्रकार मुनियों में निःस्पृह निराकांक्षी महावीर को बुद्धिमान लोग सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।

जहा सयंभू उदहीण सेट्ठे
नागेसु वा धरणिंद - माहु सेट्ठे।
खोओदए वा रस वेजयंते,
तवो-वहाणे मुणि वेजयंते॥२०॥

अन्वयार्थ- **जहा उदहीण**=जैसे समुद्रों में, **सयंभू सेट्ठे**=स्वयंभूरमण समुद्र श्रेष्ठ है, **नागेसु धरणिंद सेट्ठे माहु**=नाग कुमारों में धरणेन्द्र को श्रेष्ठ कहते हैं, **खोओदए वा रस वेजयंते**=इक्षु रसोदक सब रसों में श्रेष्ठ है, **तवो वहाणे**=विशिष्ट तप के कारण, **मुणि वेजयंते**=मुनि श्री भगवान महावीर सर्वश्रेष्ठ हैं।

भावार्थ- समुद्रों में स्वयंभूरमण समुद्र श्रेष्ठ है, नागकुमारों में धरणेन्द्र प्रमुख है, इक्षु रसोदक सर्व रसों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त तपस्वियों में श्रमण भगवान महावीर स्वामी सर्वश्रेष्ठ हैं।

हत्थीसु एरावण माहु णाए
सीहो मियाणं सलिलाण गंगा
पक्खी सु वा गरुले वेणुदेवे
णिव्वाण-वादीणिह णाय पुत्ते॥२१॥

अन्वयार्थ- हत्थीसुणाए=हाथियों में जगत्प्रसिद्ध, एरावणमाहु=ऐरावत हाथी को कहते हैं, मियाणं सीहो=मृगों में सिंह, सलिलाण गंगा=नदियों में गंगा, पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवे=पक्षियों में वेणु देव गरुड़ श्रेष्ठ है, इह निव्वाण वादीण=इस संसार में मोक्ष वादियों में, णाय पुत्ते=ज्ञात पुत्र महावीर प्रधान हैं।

भावार्थ- इन्द्रवाहन रूप में प्रसिद्ध ऐरावत हाथी समग्र हाथियों में श्रेष्ठ है, पशुओं में वनराज सिंह प्रमुख है, नदियों के जलों में गंगा जल सर्वोत्तम है, पक्षियों में वेणुदेव अर्थात् गरुड़ प्रधान है, उसी प्रकार निर्वाणवादियों में ज्ञात पुत्र भगवान महावीर सर्वश्रेष्ठ हैं।

जोहेसु णाए जह वीस सेणे,
पुप्फेसु वा जह अरविंद माहु
खत्तीण सेट्ठे जह दंतवक्के
इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे॥२२॥

अन्वयार्थ- **जहा णाए**=जैसे जग जाहिर, **वीससेणे जोहेसु**=विश्वसेना वासुदेव योद्धाओं में, **सेट्ठ**=श्रेष्ठ है, **जहा पुप्फेसु**=जैसे फूलों में, **अरविंद माहु**=कमल को प्रधान कहते हैं, **जह खत्तीण**=जैसे क्षत्रियों के मध्य में, **दंत वक्के**=दन्तवक्र चक्रवर्ती श्रेष्ठ है, **तह**=उसी प्रकार, **इसीण वद्धमाणे सेट्ठे**=ऋषियों में वर्धमान स्वामी श्रेष्ठ हैं।

भावार्थ- जैसे योद्धाओं में वासुदेव जगत्प्रसिद्ध योद्धा है, जैसे पुष्पों में कमल पुष्प प्रधान है, जैसे क्षत्रियों में दन्तवक्र चक्रवर्ती श्रेष्ठ है, उसी प्रकार ऋषियों में वर्धमान स्वामी प्रधान हैं।

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं,
सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति
तवेसु वा उत्तमं बम्भचेरं,
लोगुत्तमे समणे णायपुत्ते॥२३॥

अन्वयार्थ- **दाणाणं**=समस्त दानों में, **अभय-प्पयाणंसेट्ठं**=अभयदान श्रेष्ठ है, **सच्चेसु**=सत्य वचनों में, **अणवज्जं वयंति**=पीड़ाकारी न हो, उस सत्य वचन को श्रेष्ठ कहते हैं, **तवेसु**=तपों में, **बंभचेरं उत्तमं**=नव कोटि युक्त ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है, **समणे**=श्रमणों में, **णायपुत्ते**=ज्ञात पुत्र वर्धमान स्वामी, लोगुत्तमे=संसार में सर्वोत्तम है।

भावार्थ- जगत् के सर्व दानों में सर्वश्रेष्ठ दान अभयदान है, समस्त सत्य वाक्यों में दु:ख न पहुँचाने, घात न करने वाला वाक्य श्रेष्ठ है, तपों में नव बाड़ सहित ब्रह्मचर्य का पालन करना श्रेष्ठ तप है, उसी प्रकार ज्ञातपुत्र भगवान महावीर तीन लोक में सर्वोत्तम हैं।

ठिईण सेट्ठा लव सत्तमा वा,
सभा सुहम्मा व सभाण सेट्ठा।
निव्वाण सेट्ठा जह सव्व धम्मा,
ण णाय पुत्ता परमत्थि णाणी॥२४॥

अन्वयार्थ- **ठिईण**=स्थिति वालों में, **लव सत्तमा**=पाँच अणुत्तर विमानवासी देव, **सेट्ठा**=श्रेष्ठ है, **सभाण**=सब सभाओं में, **सुहम्मा सभा सेट्ठा**=सुधर्मा सभा श्रेष्ठ है, **जह सव्व धम्मा**=जैसे सर्वधर्मों में, **निव्वाण सेट्ठा**=मोक्ष श्रेष्ठ है, **ण णाय पुत्ता परमत्थि णाणी**=ज्ञातपुत्र महावीर स्वामी से कोई श्रेष्ठ ज्ञानवान् नहीं है।

भावार्थ- जितने भी स्थिति वाले हैं, उनमें पाँच अनुत्तर विमानों में रहने वाले देव सर्वोत्कृष्ट स्थिति वाले हैं, समस्त सभाओं में सुधर्मा सभा अनेक क्रीड़ा स्थलों से सम्पन्न होने से श्रेष्ठ हैं, जैसे सभी धर्मो-कुप्रावचनिक भी अपने दर्शन को निर्वाण प्रदाता कहते हैं। अत: निर्वाण श्रेष्ठ हैं, इसी प्रकार ज्ञातपुत्र से श्रेष्ठ कोई ज्ञानवान नहीं है।

पुढोवमे धुणइ विगय गेही
न सण्णिहिं कुव्वइ आसुपण्णे।
तरिउं समुद्दं व महाभवोघं,
अभयंकरे वीर अणंत चक्खू॥२५॥

अन्वयार्थ- **पुढोवमे**=पृथ्वी के समान, सबके आधार भूत, **धुणइ**=कर्म मल को दूर करने वाले, **विगय गेही**=अनासक्त है, **आसुपण्णे**=शीघ्र बुद्धि वाले, **ण सण्णिहिं कुव्वइ**=न संग्रह करते हैं। **समुद्दे व**=सागरवत्, **महाभवोघं**=विशाल संसार को, **तरिउं**=पार कर गये, **अभयंकरे**=प्राणियों को अभयदाता, **वीर**=महावीर जिनेश्वर, **अणंत चक्खू**=अनन्त दर्शन वाले हैं।

भावार्थ- भगवान महावीर सर्वप्राणियों के लिए पृथ्वी के समान आधारभूत हैं, अष्ट प्रकार के कर्मदल समूह को नष्ट करने वाले हैं, गृद्धि

भाव से सर्वथा रहित हैं, सर्वत्र सर्वदा उपयोगवान है, किसी भी वस्तु की सन्निधि नहीं करते हैं, अर्थात् धन-धान्य आदि पदार्थों को संग्रह नहीं करते है व क्रोध आदि विकारों की सन्निधि (निकटता, लगाव) नहीं करते। महाभयंकर जन्म-मरण रूप संसार को तैर कर पार पाए हुए हैं, चरम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त हो गए हैं, अभ्यंकर है और अनन्त ज्ञान-दर्शन सम्पन्न है।

कोहं च माणं च तहेव मायं
लोहं चउत्थं अज्झत्थ दोसा
एयाणि वंता अरहा महेसी,
ण कुव्वइ पाव ण कारवेइ॥२६॥

अन्वयार्थ- **अरहा महेसी**=अरिहंत महर्षि, **कोहं च माणं च तहेव मायं**=क्रोध, मान और माया तथा उसी प्रकार, **चउत्थं**=चौथे लोभ रूप, **एयाणि**=इन, **अज्झत्थ दोसा**=आध्यात्म दोषों को, **वंता**=छोड़ करके, **ण पाव कुव्वइ**=न पाप करते हैं, **न कारवेइ**=न करवाते हैं।

भावार्थ- अर्हन् महर्षि महावीर क्रोध, मान, माया और चौथे लोभ इन आध्यात्म दोषों का वमन करके अर्हन्त (विश्ववन्ध्य तीर्थंकर) बनें हैं। वे स्वयं न पापमय प्रवृत्ति का सेवन करते थे और न पाप का सेवन करवाते थे।

किरियाकिरियं वेणइयाणुवायं,
अण्णाणियाणं पडियच्च ठाणं।
से सव्व वायं इइ वेयइत्ता,
उवट्ठिए संजम दीह रायं॥२७॥

अन्वयार्थ- **किरिय-अकिरियं**=क्रियावादी, अक्रियावादी के मत को **वेणइयाणुवायं**=विनयवादी के कथन को, **अण्णाणियाणं**=अज्ञानवादियों के मत को, **पडियच्च**=जानकर, **से इति**=उस वीर प्रभु ने इस प्रकार, **सव्व वायं**=सब वादियों के मत को, **वेयइत्ता**=जानकर के, **संजम दीह रायं**=संयम में जीवन भर के लिए, **उवट्ठिए**=स्थित हुए हैं।

भावार्थ- क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी तथा अज्ञानवादियों के मत को जानकर तथा समस्त वादों को समझकर जीवन-पर्यन्त संयम भाव में स्थिर हुए।

से वारिया इत्थी सराइभत्तं,
उवहाणवं दुक्ख खयट्ठयाए।
लोगं विदित्ता आरं परं च,
सव्वं पभू वारिय सव्व वारं॥२८॥

अन्वयार्थ- से प्रभु=उन प्रभु महावीर स्वामी ने, **सराइ भत्तं इत्थी वारिया**=रात्रि भोजन सहित स्त्री को छोड़कर के, **दुक्ख-खयट्ठयाए**=दु:खों को क्षय करने के लिए, **उवहाणवं**=तपस्या में लगे थे, **आरं परं च लोगं विदित्ता**=इस लोक और परलोक को जानकर, **सव्व वारं सव्वं वारिय**=सब प्रकार के पापों को छोड़ दिया।

भावार्थ- प्रभु महावीर रात्रि भोजन के साथ-साथ स्त्री संसर्ग का भी परित्याग कर दु:खों को क्षय करने के लिए तपश्चर्या में लग गए। इस लोक और परलोक तथा इनके कारणों को जानकर के समस्त पापकर्मों का पूर्णरूपेण त्याग कर दिया था।

सोच्चा य धम्मं अरहंत भासियं,
समाहियं अट्ठ-पदो व सुद्धं।
तं सद्दहणा य जणा अणाउ,
इंदा व देवाहिव आगमिस्संति॥२९॥ त्ति बेमि॥

अन्वयार्थ- अरहंत भासियं=अरिहंत देव द्वारा कथित, **समाहियं**=युक्ति युक्त, **अट्ठ-पदो व-सुद्धं**=अर्थ और पदों से पूर्ण शुद्ध, **धम्मं सोच्चा**=धर्म को सुनकर, **तं सद्दहणा**=उनमें श्रद्धान रखने वाले, **जणा**=मनुष्य, **अणाउ**=आयु कर्म रहित होकर मोक्ष को पाते हैं, **या इंदेव**=अथवा वे इन्द्र, **देवाहिव**=देवताओं के अधिपति, **आगमिस्संति**=होते हैं।

भावार्थ- श्री अरिहंत प्रभु द्वारा प्रतिपादित धर्म को सुनकर उस पर जो श्रद्धा रखते हैं, वे भव्यजन आयुकर्म से रहित होकर मुक्ति को पाते हैं अथवा इन्द्र के समान देवताओं के स्वामी बनते हैं। श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि-जैसा मैंने अपने धर्मोपदेशक धर्माचार्य से सुना है, वैसा मैं कहता हूँ।

2. उत्तराध्ययन सूत्र

चतुरंगीय नामक तीसरा अध्ययन

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं॥१॥

इह=इस संसार में, **जंतुणो**=प्राणी के लिये, **माणु-सत्तं**=मनुष्य-जन्म, **सुई**=धर्मशास्त्र का श्रवण, **सद्धा**=धर्म पर श्रद्धा, **य**=और, **संजमम्मि**=संयम में, **वीरियं**=पराक्रम-आत्मशक्ति लगाना इन, **चत्तारि**=चार, **परमंगाणि**=प्रधान अंगों की प्राप्ति होना, **दुल्लहाणी**=दुर्लभ है।।1।।

समावण्णाण संसारे, णाणागोत्तासु जाइसु।
कम्मा णाणाविहा कट्टु, पुढो विस्संभया पया॥२॥

संसारे=इस संसार में, **पया**=जीव, **णाणाविहा**=अनेक प्रकार के, **कम्मा**=कर्म, **कट्टु**=करके, **णाणागोत्तासु**=विविध गोत्र वाली, **जाइसु**=जातियों में, **समावण्णाण**=प्राप्त हुए हैं और वे, **पुढो**=एक-एक करके, **विस्संभिया**=सारे विश्व में व्याप्त हैं- कभी कहीं, कभी कहीं उत्पन्न होकर सारे लोक में जन्म-मरण किये हैं।।2।।

एगया देवलोएसु, णरएसु वि एगया।
एगया आसुरं कायं, अहाकम्मेहिं गच्छइ॥३॥

अहाकम्मेहिं=अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार जीव, **एगया**=कभी, **देवलोएसु**=देवलोक में, **एगया**=कभी, **णरएसु**=नरक में, **वि**=और, **एगया**=कभी, **आसुरे काये**=असुर योनि में, **गच्छइ**=उत्पन्न होता है।।3।।

एगया खत्तिओ होइ, तओ चंडाल बुक्कसो।
तओ कीडपयंगो य, तओ कुंथूपिवीलिया॥४॥

एगया=मनुष्य-जन्म योग्य कर्म के उदय आने पर यह जीव कभी, **खत्तिओ**=क्षत्रिय, **होई**=होता है, **तओ**=इसके बाद कभी, **चंडाल बुक्कसो**= चंडाल और बुक्कस (वर्णशंकर) होता है, **तओ**=कभी, **कीडपयंगो**=कीड़ा और पतंगा, **य**-तथा, **तओ**-कभी, **कुंथू**=कुन्थु और, **पिवीलिया**=चींटी हो जाता है।।4।।

एवमावट्टजोणीसु, पाणिणो कम्म-किव्विसा।

ण णिव्विज्जंति संसारे, सव्वट्ठेसु व खत्तिया।।५।।

सव्वट्ठेसु व खत्तिया=जिस प्रकार सभी मनोज्ञ काम-भोग एवं राज्य-ऋद्धि मिल जाने पर भी क्षत्रियों की राज्य बढ़ाने की तृष्णा शांत नहीं होती, **एवं**=उसी प्रकार, **संसारे**=संसार में, **कम्मकिव्विसा**=अशुभ कर्म वाले, **पाणिणो**=प्राणी, **आवट्टजोणीसु**=नाना प्रकार की योनियों में परिभ्रमण करते हुए भी, **ण णिव्विज्जंति**=निर्वेद प्राप्त नहीं करते, **संसारे**=परिभ्रमण से उन्हें, कभी उद्वेग नहीं होता।।5।।

कम्म-संगेहिं सम्मूढा, दुक्खिया बहुवेयणा।
अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मंति पाणिणो।।६।।

कम्मसंगेहिं=कर्मों के सम्बन्ध से, **सम्मूढा**=मूढ़ बने हुए, **दुक्खिया**=दुःखी और, **बहुवेयणा**=अतिशय वेदना वाले, **पाणिणो**=प्राणी, **अमाणुसासु**=मनुष्य-योनि के सिवाय दूसरी नरक आदि, **जोणिसु**=योनियों में, **विणिहम्मंति**=अनेक प्रकार से दुःख भोगते हैं।।6।।

कम्माणं तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ उ।
जीवा सोहि-मणुप्पत्ता आययंति मणुस्सयं।।७।।

कयाइ=कभी, **आणुपुव्वी**=क्रमशः, **कम्माणं**=मनुष्य-गति प्रतिबन्धक कर्मों के, **पहाणाए**=नाश होने पर, **सोहिं**=कर्म-क्षय रूप शुद्धि को, **अणुप्पत्ता**=प्राप्त हुए, **जीवा**=जीव, **मणुस्सयं**=मनुष्य-जन्म, **आययंति**=प्राप्त करते हैं।।7।।

माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा।
जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खंतिमहिंसयं।।८।।

माणुस्सं=मनुष्य सम्बन्धी, **विग्गहं**=शरीर, **लद्धुं**=पाकर भी, **धम्मस्स**=धर्म का, **सुई**=श्रवण करना, **दुल्लहा**=दुर्लभ है, **जं**=जिसे, **सोच्चा**=सुनकर जीव, **तवं**=तप, **खंति**=क्षमा और, **अहिंसयं**=अहिंसा, **पडिवज्जंति**=अंगीकार करते हैं।।8।।

आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परम-दुल्लहा।
सोच्चा णेयाउयं मग्गं, बहवे परिभस्सइ।।९।।

आहच्च=कदाचित्, **सवणं**=धर्म का श्रवण, **लद्धुं**=पाकर भी उस पर, **सद्धा**=श्रद्धा-रुचि होना, **परमदुल्लहा**=अत्यन्त दुर्लभ है क्योंकि, **णेयाउयं**=

न्याय संगत, **मग्गं**=सम्यग्दर्शनादि रूप मोक्ष मार्ग, **सोच्चा**=सुनकर भी, **बहवे**=बहुत से मनुष्य, **परिभस्सई**=उससे भ्रष्ट हो जाते हैं।।9।।

सुइं च लद्धुं सद्धं च, वीरियं पुण दुल्लहं।
बहवे रोयमाणा वि, णो य णं पडिवज्जइ।।१०।।

मनुष्य-जन्म, **य**=और, **सुइ**=धर्मश्रवण, **य**=और, **सद्धं**=धर्म श्रद्धा, **लद्धुं**=पाकर भी, **वीरियं**=संयम में पराक्रम करना-शक्ति लगाना, **पुण**=और भी, **दुल्लहं**=दुर्लभ है क्योंकि, **बहवे**=बहुत से मनुष्य, **रोयमाणा वि**=धर्म एवं संयम को अच्छा तो समझते हैं और रुचिपूर्वक सुनते भी हैं किन्तु, **णं**=उसे, **णो पडिवज्जइ**=आचरण में नहीं ला सकते।।10।।

माणुसत्तम्मि आयाओ, जो धम्मं सोच्च सद्दहे।
तवस्सी वीरियं लद्धुं, संवुडे णिद्धुणे रयं।।११।।

माणुसत्तम्मि=मनुष्य जन्म, **आयाओ**=पाकर , **जो**=जो आत्मा, **धम्मं**=धर्म, **सोच्च**=सुनकर, **सद्दहे**=उस पर श्रद्धा रखता है, **वीरियं**=संयम विषयक वीर्य (शक्ति), **लद्धुं**=पाकर संयम में उद्यम कर और, **तवस्सी**=तपस्वी और, **संवुडे**=संवर वाला होकर वह, **रयं**=कर्मरज का, **णिद्धुणे**=नाश कर देता है।।11।।

भावार्थ- इन चारों दुर्लभ अंगों को प्राप्त कर संयम की आराधना करने वाला मुमुक्षु संवर द्वारा नवीन कर्मों को आने से रोकता है और तपस्या द्वारा पूर्वकृत कर्मों का नाश करता है एवं अन्त में शाश्वत सिद्ध हो जाता है।

सोही उज्जुय-भूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।
णिव्वाणं परमं जाइ, घयसित्तिव्व पावए।।१२।।

मनुष्य जन्म, धर्मश्रवण, धर्मश्रद्धा और संयम में पराक्रम- ये चार प्रधान अंग पाकर मुक्ति की ओर प्रवृत्त हुए, **उज्जुयभूयस्स**=सरल भाव वाले व्यक्ति की, **सोही**=शुद्धि होती है और, **सुद्धस्स**=शुद्धि प्राप्त आत्मा में ही, **धम्मो**=धर्म, **चिट्ठई**=ठहर सकता है, **घयसित्तिव्व पावए**=घी से सींची हुई अग्नि के समान तप-तेज से देदीप्यमान होता हुआ वह आत्मा, **परमं**=परम, **णिव्वाणं**=निर्वाण-मोक्ष, **जाइ**=प्राप्त करता है।।12।।

विगिंच कम्मुणो हेउं, जसं संचिणु खंतिए,
सरीरं पाढवं हिच्चा, उड्ढं पक्कमई दिसं।।१३।।

कम्मुणो=मनुष्य-जन्म आदि के रोकने वाले कर्मों के, **हेउं**=हेतु-मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और अशुभ-योगों को, **विगिंच**=पृथक् करो, **खंतिए**=क्षमा आदि दस विध यतिधर्म का सेवन करके, **जसं**=संयम रूपी यश को, **संचिणु**=अधिकाधिक बढ़ाओ। ऐसा करने वाला व्यक्ति इस, **पाढवं**=पार्थिव औदारिक, **सरीरं**=शरीर को, **हिच्चा**=छोड़कर, **उड्ढं**=ऊर्ध्व, **दिसं**=दिशा को (स्वर्ग अथवा मोक्ष को), **पक्कमई**=प्राप्त करता है।।13।।

विसालिसेहिं सीलेहिं, जक्खा उत्तरोत्तरा।
महासुक्का व दिप्पंता, मण्णंता अपुणच्चवं॥१४॥

विसालिसेहिं=अनेक प्रकार के, **सीलेहिं**=व्रत अनुष्ठानों का पालन करने से जीव यहाँ का आयुष्य पूरा कर, **उत्तरोत्तरा**=उत्तरोत्तर प्रधान विमानवासी, **जक्खा**=देव होता है वह, **महासुक्का व**=महाशुक्ल अर्थात् अत्यन्त उज्ज्वल सूर्य-चंद्रमा के समान, **दिप्पंता**=प्रकाशमान होता हुआ और, **अपुणच्चवं**='यहाँ से फिर दूसरी गति में नहीं चवुँगा'- इस प्रकार, **मण्णंता**=मानता हुआ वहाँ रहता है।।14।।

अप्पिया देवकामाणं, कामरूव विउव्विणो।
उड्ढं कप्पेसु चिट्ठंति, पुव्वा वाससया बहूं।१५॥

देवकामाणं=दिव्यांगना स्पर्श आदि देव सम्बन्धी कामों को, **अप्पिया**=प्राप्त हुए और, **कामरूव विउव्विणो**=इच्छानुसार विविध रूप बनाने की शक्ति वाले वे देव, **बहूं वाससया पुव्वा**=सैकड़ों पूर्व वर्षों तक, **उड्ढं**=ऊपर, **कप्पेसु**=सौधर्मादि एवं ग्रैवेयकादि विमानों में, **चिट्ठंति**=रहते हैं।।15।।

तत्थ ठिच्चा जहाठाणं, जक्खा आउक्खए चुया।
उवेंति माणुसं जोणिं, से दसंगेऽभिजायइ॥१६॥

जक्खा=वे देव, **तत्थ**=वहाँ देवलोक में, **जहाठाणं**=अपने-अपने स्थान पर, **ठिच्चा**=रहे हुए, **आउक्खए**=आयु-क्षय होने पर वहाँ से, **चुया**=चव कर, **माणुसं जोणिं**=मनुष्य योनि, **उवेंति**=प्राप्त करते हैं, **से**=वहाँ उन्हें, **दसंगे**=दस अंगों की, **अभिजायइ**=प्राप्ति होती है।।16।।

खित्तं वत्थुं हिरण्णं च, पसवो दासपोरुसं।
चत्तारि कामखंधाणि, तत्थ से उववज्जई॥१७॥

दस अंगों में से पहला अंग यह है- जहाँ, **खित्तं**-क्षेत्र, **वत्थुं**=वास्तु-भवन

आदि, **हिरण्णं**=सोना, **पसवो**=पशु और, **दासपोरुसं**=दास और पुरुष वर्ग ये, **चत्तारि**=चार, **कामखंधाणि**=कामस्कंध हों, **तत्थ**=वहाँ, **से**=वह दिव्य आत्मा, **उववज्जई**=उत्पन्न होता है।।17।।

मित्तवं णाइवं होइ, उच्चागोए य वण्णवं।
अप्पायंके महापण्णे, अभिजाए जसोबले।।१८।।

शेष नौ अंग इस प्रकार हैं- वह दिव्यात्मा मानव-भव में, 2. **मित्तवं**=मित्र वाला, 3. **णाइवं**=ज्ञाति वाला, 4. **उच्चागोए**=उच्च गोत्र वाला, 5. **वण्णवं**=सुन्दर वर्ण वाला, 6. **अप्पायंके**=नीरोग, 7. **महापण्णे**=महा प्रज्ञाशाली, 8. **अभिजाय**=विनीत (सबको प्रिय लगने वाला), 9. **जसो**=यशस्वी, **य**=और, 10. **बले**=बलवान्, **होइ**=होता है।।18।।

भोच्चा माणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउयं।
पुव्विं विसुद्ध-सद्धम्मे, केवलं बोहि बुज्झिया।।१९।।
चउरंगं दुल्लहं णच्चा, संजमं पडिवज्जिया।
तवसा धुयकम्मंसे, सिद्धे हवइ सासए।।२०।। त्ति बेमि

अहाउयं=यथायु (अपनी आयु के अनुसार), **माणुस्सए**=मनुष्य-भव के, **अप्पडिरुवे**=अनुपम, **भोए**=भोगों को, **भोच्चा**=भोग कर, **पुव्विं**=पूर्वभव में, **विसुद्ध-सद्धम्मे**=निदान-रहित शुद्ध धर्म का आचरण करने के कारण वह, **केवलं**=शुद्ध, **बोहि**=सम्यक्त्व को, **बुज्झिया**=प्राप्त करके तथा, **चउरंगं**=उक्त चार अंगों को, **दुल्लहं**=दुर्लभ, **णच्चा**=जानकर, **संजमं**=संयम, **पडिवज्जिया**=अंगीकार करता है और, **तवसा**=तप से, **धुयकम्मंसे**=सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके, **सासए**=शाश्वत, **सिद्धे**=सिद्ध, **हवइ**=हो जाता है, **त्ति बेमि**=पूर्ववत्।।19-20।।

।। तीसरा अध्ययन समाप्त।।

तत्व विभाग

1. गति आगति के विशेष ज्ञातव्य बिन्दु

1. नैरयिक, देवता व युगलिक अपर्याप्त अवस्था में नहीं मरते।
2. नैरयिक जीव मरकर नैरयिक, देव, युगलिक, एके., बे., ते., चऊ. तथा असन्नी ति. पंचे. में उत्पन्न नहीं होते।
3. देवता च्यवकर देव, नैरयिक, युगलिक, बे., ते., चऊ., असन्नी ति. पंचे. तथा तेउ., वायु में नहीं जाते।
4. एके., बे., ते., चऊ. जीव नैरयिक देवता में उत्पन्न नहीं होते। नैरयिक, देवता में जाने वाले पंचेन्द्रिय ही होते हैं।
5. नैरयिक, देव, युगलिक में मात्र दो गति के जीव आते हैं। मनुष्य एवं तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय।
6. असन्नी मनुष्य अपर्याप्त अवस्था में ही काल करता है इसलिए नैरयिक देवता में नहीं जाता।
7. असंज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय पहली पृथ्वी के नैरयिक तक तथा देवता में 25 भवनपति, 26 वाणव्यन्तर तक ही जाते हैं।
8. सन्नी भुजपरिसर्प (चूहा, छिपकली, नेवला आदि) 1, 2 पृथ्वी के नैर. तक ही जाते हैं।
9. सन्नी खेचर (चिड़िया, कबूतर, कौवा आदि) 1,2,3 पृथ्वी के नैर. तक ही जाते हैं।
10. सन्नी स्थलचर (शेर, गाय, कुत्ता आदि) जो अपने बच्चों को स्तनपान कराते हैं वे 1,2,3,4 पृथ्वी के नैर. तक ही जाते हैं।
11. सन्नी उरपरिसर्प (सभी सर्प की जाति) 1,2,3,4,5 पृथ्वी के नैरयिक तक ही जाते हैं।
12. जलचर स्त्री 6ठीं पृथ्वी के नैरयिक तक तथा जलचर पुरुष, नपुं. सातवीं पृथ्वी के नैरयिक तक जाते हैं।
13. सन्नी ति. पंचें. 8वें देवलोक तक जा सकता है तथा 8वें देवलोक तक के देवता सन्नी ति. पंचे. में आ सकते हैं। आगे नहीं।
14. तेउ, वायु एवं 7वीं पृथ्वी के नैरयिक जीवों की नियमा तिर्यञ्च गति।
15. वासुदेव, चक्रवर्ती, स्त्री रत्न (श्री देवी) की नियमा नरक गति।

16. 9वें देवलोक से सर्वार्थसिद्ध देवों की नियमा मनुष्य गति।
17. साधु, श्रावक एवं युगलिक की नियमा देवगति।
18. तीर्थंकर भगवान् पहले मुनि बनके निर्वाण प्राप्त करते हैं।
19. केवली भगवान पहले मुनि बनते भी हैं, नहीं भी। लेकिन सामायिक चारित्र के परिणाम, सूक्ष्म संपराय तथा यथाख्यात चारित्र अवश्य प्राप्त करते हैं।
20. चक्रवर्ती की गति यह संदेश देती है कि पद एवं भोग लिप्सा अधोगति का कारण है।
21. 1 ली पृथ्वी के नैरयिक से आया जीव चक्रवर्ती बन सकता है।
22. 1, 2 री पृथ्वी के नैरयिक से आया जीव बलदेव, वासुदेव।
23. 1,2,3 री पृथ्वी के नैरयिक से आया जीव तीर्थंकर।
24. 1,2,3,4 थी पृथ्वी के नैरयिक से आया जीव केवली।
25. 1,2,3,4,5वीं पृथ्वी के नैरयिक से आया जीव साधु।
26. 1,2,3,4, 5, 6ठी पृथ्वी के नैरयिक से आया जीव श्रावक।
27. 1,2,3,4,5,6,7 वीं पृथ्वी के नैरयिक से आया हुआ जीव सम्यग् दृष्टि बन सकता है।

2. गति आगति

श्री प्रज्ञापना सूत्र के छठे पद के आधार से
जीवों की आगति और गति का वर्णन किया जाता है।

आगति- जीव जिस गति से आकर उत्पन्न होता है।

गति- जीव मरने के बाद जिस गति में जाकर उत्पन्न होता है।

अपेक्षा भेद से जीव के एक, दो, तीन, चार आदि अनेक भेद होते हैं। किसी अपेक्षा से 563 भेद भी हैं। ये इस प्रकार हैं- नैरयिकों के 14, तिर्यञ्च के 48, मनुष्यों के 303 और देवों के 198

जीव के 563 भेद-

नैरयिकों के 14 भेद

7 पृथ्वियों के अपर्याप्त व पर्याप्त नैरयिक कुल **14 भेद**

तिर्यञ्च के 48 भेद

एकेन्द्रिय के 22 -

पृथ्वीकाय–	सूक्ष्म अप., सूक्ष्म प., बादर अप., बादर प.	= 4
अप्काय–	सूक्ष्म अप., सूक्ष्म प., बादर अप., बादर प.	= 4
तेउकाय–	सूक्ष्म अप., सूक्ष्म प., बादर अप., बादर प.	= 4
वायुकाय -	सूक्ष्म अप., सूक्ष्म प., बादर अप., बादर प.	= 4
वनस्पतिकाय–	सूक्ष्म निगोद, बादर निगोद, बादर प्रत्येक वनस्पति इनके अपर्याप्त व पर्याप्त	= 6
		22

विकलेन्द्रिय के 6– बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त।

तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के 20–

असन्नी ति. पंचेन्द्रिय	सन्नी ति. पंचेन्द्रिय
जलचर	जलचर
स्थलचर	स्थलचर
खेचर	खेचर
उरपरिसर्प	उरपरिसर्प
भुजपरिसर्प	भुजपरिसर्प

5 असन्नी ति. पंचे. व 5 सन्नी ति. पंचे. के अपर्या. पर्या. = 20

तिर्यञ्च के कुल भेद (22 + 6 + 20) =**48**

मनुष्य के 303 भेद

15 कर्मभूमिज मनुष्य	- 5 भरत, 5 ऐरवत, 5 महाविदेह
30 अकर्मभूमिज मनुष्य	- 5 देवकुरू, 5 उत्तरकुरू
	- 5 हरिवर्ष, 5 रम्यक्वर्ष
	- 5 हेमवत, 5 हेरण्यवत

56 अन्तर्द्वीपों के मनुष्य

इन 101 गर्भज मनुष्य के अपर्याप्त पर्याप्त = 202

इन 101 गर्भज मनुष्यों की अशुचि✦ में उत्पन्न
सम्मूर्च्छिम अपर्याप्त★ मनुष्य = 101

कुल = 303

देवता के 198 भेद

भवनपति के 10 भेद - 1. असुरकुमार, 2. नागकुमार, 3. सुपर्णकुमार, 4. विद्युतकुमार, 5. अग्निकुमार, 6. द्वीपकुमार, 7. उदधिकुमार, 8. दिशाकुमार, 9. पवनकुमार, 10. स्तनितकुमार।

परमाधार्मिक देवों के 15 भेद- 1. अम्ब, 2. अम्बरीष, 3. श्याम, 4. शबल, 5. रौद्र, 6. महारौद्र, 7. काल, 8. महाकाल, 9. असिपत्र, 10. धनुष, 11. कुम्भ, 12. बालुका, 13. वैतरणी, 14. खरस्वर, 15. महाघोष।

वाणव्यन्तर के 26 भेद-

● **पिशाचादि 8** - 1. पिशाच, 2. भूत, 3. यक्ष, 4. राक्षस, 5. किन्नर, 6. किम्पुरुष, 7. महोरग, 8. गंधर्व।

● **आणपण्णे आदि 8**- 1. आणपण्णे, 2. पाणपण्णे, 3. इसिवाई, 4. भूयवाई, 5. कन्दे, 6. महाकन्दे, 7. कूह्मण्डे, 8. पयंगदेवे।

● **जृम्भक के 10**- 1. अन्न जृम्भक, 2. पान जृम्भक, 3. लयन जृम्भक, 4. शयन जृम्भक, 5. वस्त्र जृम्भक, 6. फल जृम्भक, 7. पुष्प जृम्भक, 8. फल पुष्प जृम्भक, 9. विद्या जृम्भक, 10. अव्यक्त (अधिपति) जृम्भक।

ज्योतिषी देवों के 10 भेद- 1. चन्द्र, 2. सूर्य, 3. ग्रह, 4. नक्षत्र, 5. तारा। इनके चर (भ्रमणशील) व अचर (स्थिर) के भेद से 10 भेद हुए।

✦ सम्मूर्च्छिम मनुष्य नियमा अपर्याप्त अवस्था में काल करते हैं इसलिए इनके पर्याप्त के भेद नहीं होते।

★ (14 उत्पत्ति के स्थान- 1. उच्चारेसु वा (मल) 2. पासवणेसु वा (मूत्र), 3 खेलेसु वा (कफ), 4. सिंघाणेसु वा (श्लेष्म), 5. वंतेसु वा (वमन), 5. पित्तेसु वा (पित्त), 7 पुइएसु वा (पीप), 8. सोणिएसु वा (रक्त), 9. सुक्केसु वा (वीर्य), 10. सुक्कपुग्गल परिसाडिएसु वा (सूखे हुए वीर्य आदि के पुद्गलों के पुनः गीले होने पर), 11. विगयजीव कलेवरेसु वा (मृत कलेवरों में) 12. थी-पुरिस संजोएसु वा (स्त्री-पुरुष के संयोग में), 13. नगर निधम-मणेसु वा (नगर की नालियों में), 14. सव्वेसु चेव असुइलणेसु वा (मनुष्य के सभी अशुचि स्थान में)। (प्रथम प्रज्ञापनापद)

वैमानिक देवों के 38 भेद-

● **कल्पोपपन्न के 12 भेद** - 1. सौधर्म, 2. ईशान, 3. सनत्कुमार, 4. माहेन्द्र, 5. ब्रह्म, 6. लांतक, 7. महाशुक्र, 8. सहस्रार, 9. आणत, 10. प्राणत, 11. आरण और 12. अच्युत।

● **किल्विषिक देवों के 3 भेद**- 1. त्रैपल्योपमिक, 2. त्रैसागरिक, 3. त्रयोदश सागरिक।

● **लोकान्तिक देवों के 9 भेद** - 1. सारस्वत, 2. आदित्य, 3. वह्नि, 4. वरूण, 5. गर्दतोय, 6. तुषित, 7. अव्याबाध, 8. आग्नेय और 9. अरिष्ट।

कल्पातीत के दो भेद- ग्रैवेयक और अनुत्तर वैमानिक।

● **ग्रैवेयक के 9 भेद**- 1. भद्र, 2. सुभद्र, 3. सुजात, 4. सुमनस, 5. सुदर्शन, 6. प्रियदर्शन, 7. आमोह, 8. सुप्रतिबद्ध और 9. यशोधर।

● **अनुत्तर विमान के 5 भेद**- 1. विजय, 2. वैजयन्त, 3. जयन्त, 4. अपराजित और 5. सर्वार्थसिद्ध।

इस प्रकार- 10+15+8+8+10+10+12+3+9+9+5=99

ये 99 अपर्याप्त व 99 पर्याप्त = **198 देव**

1. पहली पृथ्वी के नैरयिक	आगति 25	15	कर्मभूमिज मनुष्य पर्याप्त
		5	सन्नी तिर्यञ्च पर्याप्त
		5	असन्नी तिर्यञ्च पचें. पर्याप्त
	गति 40	15	कर्मभूमिज मनुष्य के अपर्याप्त, पर्याप्त
		5	सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त, पर्याप्त
2. दूसरी पृथ्वी के नैरयिक	आगति 20	15	कर्मभूमिज मनुष्य पर्याप्त
		5	सन्नी तिर्यञ्च पंचें. पर्याप्त
	गति 40		पहली पृथ्वी के समान
3. तीसरी पृथ्वी के नैरयिक	आगति 19	15	कर्मभूमिज के मनुष्य पर्याप्त
		4	सन्नी ति. के पर्याप्त (भुज-परिसर्प को छोड़कर)
	गति 40		पहली पृथ्वी के समान

4. चौथी पृथ्वी के नैरयिक	आगति 18	15	कर्मभूमिज मनुष्य पर्याप्त
		3	सन्नी ति. के पर्याप्त (भुज. व खेचर को छोड़कर)
	गति 40		पहली पृथ्वी के समान
5. पाँचवीं पृथ्वी के नैरयिक	आगति 17	15	कर्म भूमि मनुष्य पर्याप्त
		2	सन्नी ति. पर्याप्त (भु.खे.स्थ. छोड़कर)
	गति 40		पहली पृथ्वी के समान
6. छठी पृथ्वी के नैरयिक	आगति 16	15	कर्मभूमिज मनुष्य पर्याप्त
		1	सन्नी ति. पर्याप्त (जलचर) (भु.खे.स्थ.उ. छोड़कर)
	गति 40		पहली पृथ्वी के समान
7. सातवीं पृथ्वी के नैरयिक	आगति 16	15	कर्मभूमिज मनुष्य पर्याप्त
		1	मत्स्य जलचर के पर्याप्त (स्त्री छोड़कर)
	गति 10	5	स.ति.पंचें.-अपर्या. व पर्या.
8. भवनपति, वाणव्यंतर देव	आगति 111	101	संज्ञी मनुष्य के पर्याप्त
		5	सन्नी तिर्यञ्च के पर्याप्त
		5	असन्नी तिर्यञ्च पंचें. के पर्याप्त
	गति 46	15	कर्मभूमिज मनुष्य
		5	सन्नी तिर्यञ्च पंचें.
		3	बा.पृथ्वी, बा.अप्, प्रत्येक वन.
			-इन 23 के अपर्याप्त व पर्याप्त
9. ज्योतिषी व पहला देवलोक	आगति 50	15	कर्मभूमिज मनुष्य पर्याप्त
		5	सन्नी तिर्यञ्च पर्याप्त
		30	अकर्मभूमिज मनुष्य पर्याप्त
	गति 46	15	क.भू.मनुष्य, 5 स. ति. पंचें.
		3	बा.पृथ्वी, बा.अप्, प्रत्येक वन.
			-इन 23 के अपर्या. व पर्या.
10. दूसरा देवलोक	आगति 40	15	कर्मभूमिज मनुष्य पर्याप्त
		5	सन्नी तिर्यञ्च पंचें. पर्याप्त

		20	–देवकुरू 5, उ त्तरकुरू 5, हरिवर्ष 5, रम्यक् वर्ष 5
	गति 46		उपरोक्तवत्
11. पहला किल्विषी	आगति 30	15	कर्मभूमिज मनुष्य पर्याप्त
		5	सन्नी तिर्यञ्च पंचें. पर्याप्त
		10	–देवकुरू 5, उत्तरकुरू 5
	गति 46		उपरोक्तवत्
12. 3 से 8 देवलोक, 9 लोकान्तिक देव, 2 (किल्विषी 2–3) **(17** देव**)**	आगति 20	15	कर्मभूमिज मनुष्य पर्याप्त
		5	सन्नी तिर्यञ्च पंचें. पर्याप्त
	गति 40	15	क. भू. मनुष्य
		5	सन्नी तिर्यं. पंचें.
			इन 20 के अपर्याप्त व पर्याप्त
13. 9 से 12 देवलोक, 9 ग्रैवेयक देव, 5 अनुत्तर देव **(18** देव**)**	आगति 15	15	कर्मभूमिज मनुष्य पर्याप्त
	गति 30	15	कर्मभूमिज मनुष्य के अपर्याप्त व पर्याप्त
14. बादर पृथ्वी, बादर अप्, प्रत्येक वनस्पति	आगति 243	30	कर्मभूमिज मनुष्य (अपर्याप्त 15+पर्याप्त 15)
		48	तिर्यञ्च
		101	सम्मूर्च्छिम मनुष्य (अपर्याप्त)
		64▲	25 भवनपति+परमाधार्मिक 26 वाणव्यन्तर देव 10 ज्योतिषी देव 2 पहला दूसरा देव 1 पहला किल्विषी देव
	गति 179	30	कर्मभूमिज मनुष्य (15+15)
		48	तिर्यञ्च
		101	सम्मूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त.
15. सूक्ष्म व बादर तेउ, वायु	आगति 179	30	कर्मभूमि मनुष्य (15+15)
		48	तिर्यञ्च

▲ देवता प्रत्येक वनस्पति में ही आते हैं, साधारण वनस्पति में नहीं आते।

		101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त.
	गति 48	48 तिर्यञ्च
16.सू.पृ.अप्.वन., बा. साधा. वन. व तीन विकलेन्द्रिय	आगति 179	179 उपरोक्तवत् (30+48+101)
	गति 179	179 उपरोक्तवत् (30+48+101)
17.असन्नी तिर्यञ्च पंचें.	आगति 179	179 उपरोक्तवत् (30+48+101)
	गति 395	2-पहली पृथ्वी के नैरयिक (अपर्याप्त+पर्याप्त) 48 तिर्यञ्च 101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य 30 कर्मभूमिज मनुष्य 112 अन्तर्द्वीप मनुष्य (56x2) (अपर्याप्त व पर्याप्य) 102 देव-भवनपति 25 वाणव्यंतर 26 अपर्याप्त व पर्याप्त (51x2)
18 सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय	आगति 267	7 पृथ्वी के नैरयिक (पर्याप्त) 48 तिर्यञ्च 101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य 30 15 कर्मभूमिज मनुष्य के अपर्याप्त व पर्याप्त 81 [25 भवनपति, 26 वाणव्यन्तर, 10 ज्योतिष देव, 8 वैमानिक (1 से 8), 9 लौकान्तिक देव, 3 किल्विषी देव]
जलचर	गति 527	14 नैरयिक 48 तिर्यंच 303 मनुष्य 162 देवता (81) के अपर्याप्त व पर्याप्त
उरपरिसर्प	गति 523	10 नैरयिक (1 से 5वीं पृथ्वी तक) 48 तिर्यञ्च

		303	मनुष्य
		162	देव (81x2)
स्थलचर	गति 521	8	नैरयिक (1से 4 पृथ्वी तक)
		48	तिर्यञ्च
		303	मनुष्य
		162	देव (81x2)
खेचर	गति 519	6	नैरयिक (1 से 3 पृथ्वी तक)
		48	तिर्यञ्च
		303	मनुष्य
		162	देवता (81x2)
भुजपरिसर्प	गति 517	4	नैरयिक (1व 2 पृथ्वी तक)
		48	तिर्यञ्च
		303	मनुष्य
		162	देवता (81x2)
19. कर्मभूमि मनुष्य	आगति 276	6	(1से 6 पृथ्वी के नैरयिक पर्या.)
		40	तिर्यञ्च (तेउ. वायु. के 8 छोड़कर)
		131	मनुष्य (सम्मूर्च्छिम मनुष्य 101+क.भू.मनुष्य 30)
		99	देवता पर्याप्त
	गति 563		सभी में जाते हैं
20.असन्नी मनुष्य	आगति 171	40	तिर्यञ्च (ते.वा.के 8 छोड़कर)
		101	सम्मूर्च्छिम मनुष्य
		30	कर्मभूमिज मनुष्य
	गति 179		उपरोक्तवत्
21. 30 अकर्मभूमि मनुष्य	आगति 20	15	कर्मभूमिज मनुष्य+5 सन्नी तिर्यञ्च पर्याप्त
देवकुरू उत्तर कुरू की	गति 128	64	जाति के देव (भ.25, वा.26, ज्यो.10, पहला व दूसरा देवलोक, पहली किल्विषी)- इनके अपर्याप्त व पर्याप्त
हरिवर्ष रम्यक्वर्ष की	गति 126	63	जाति के देव अपर्याप्त व पर्याप्त (64-1पहले किल्विषी को छोड़कर)

			(25+26+10+2)
हेमवत हेरण्यवत	गति 124	62	जाति के देव पर्याप्त व अपर्याप्त (दूसरा देव छोड़कर)
22.56 अन्तर्द्वीप मनुष्य	आगति 25	15	कर्मभूमि मनुष्य के पर्याप्त
		5	सन्नी तिर्यञ्च के पर्याप्त
		5	असन्नी तिर्यञ्च के पर्याप्त
	गति 102	51	देव अपर्याप्त व पर्याप्त (भ.25, वाण.26)
23. तीर्थंकर	आगति 38	3	नैरयिक (पहली से तीसरी पृथ्वी)
		35	12 देवलोक 9 लोकान्तिक देव 9 ग्रैवेयक देव 5 अनुत्तर देव
	गति		मोक्ष
24. चक्रवर्ती	आगति 82	1	पृथ्वी के नैरयिक पर्याप्त
		81	जाति के देव (परमाधार्मिक 15 व किल्विषी 3 छोड़कर)
	गति 14		नैरयिक या दीक्षा ले तो साधु की तरह
25. वासुदेव	आगति 32	2	नैरयिक (पहली, दूसरी पृथ्वी)
		30	देव(वैमानिक 12, लोकान्तिक 9, ग्रैवेयक 9)
	गति 14	1	से 7 पृथ्वी के नैररियक अपर्याप्त व पर्याप्त
26. बलदेव	आगति 83	2	नैरयिक (पहली, दूसरी पृथ्वी)
		81	देव (परमाधार्मिक 15 व किल्विषी 3 छोड़कर)
	गति		साधु की तरह
27. केवली	आगति 108	4	नैरयिक (1 से 4 पृथ्वी)
		15	कर्मभूमिज मनुष्य पर्याप्त
		5	सन्नी तिर्यञ्च के पर्याप्त

		3	पृथ्वी, पानी, वनस्पति (बादर के पर्याप्त)
		81	देव (परमाधार्मिक व किल्विषी छोड़कर)
	गति		मोक्ष
28. साधु	आगति 275	5	नैरयिक (1 से 5 पृथ्वी)
		40	तिर्यञ्च (ते.वा. के 8 छोड़कर)
		101	सम्मूर्च्छिम मनुष्य
		30	कर्मभूमि मनुष्य 15 के अपर्याप्त व पर्याप्त
		99	देवता पर्याप्त
	गति 70		वैमानिक 12, लोकान्तिक 9, ग्रैवेयक 9, अनुत्तर 5 इन 35 के अपर्याप्त व पर्याप्त
29. श्रावक	आगति 276		उपरोक्त 275 साधु के समान एवं छठी पृ. का नैरयिक
	गति 42		वैमानिक 12, लोकान्तिक 9 के अपर्याप्त व पर्याप्त
30. सम्यक्दृष्टि	आगति 363	7	नैरयिक (1 से 7 पृथ्वी के पर्याप्त)
		40	तिर्यञ्च (ते.वा. के 8 छोड़कर)
		101	संज्ञी मनुष्य पर्याप्त
		101	सम्मूर्च्छिम मनुष्य
		15	कर्मभूमिज मनुष्य के अपर्याप्त
		99	देवता पर्याप्त
	गति 282	162	(81 जाति के देवता अपर्या. व पर्या.)
		30	(15 कर्मभूमिज मनुष्य अपर्या. व पर्या.)
		60	(30 अकर्मभूमिज मनुष्य अपर्या. व पर्या.)
		10	(5 संज्ञी तिर्यञ्च अपर्या. व पर्या.)
		12	(6 नैरयिक के अपर्या. व पर्या.)
		8	3 विकलेन्द्रिय व 5 असंज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त
31. मिथ्यादृष्टि	आगति 371	7	नैरयिक (1 से 7 पृथ्वी)

		48 तिर्यञ्च
		101 मनुष्य के पर्याप्त
		15 कर्मभूमिज मनु के अपर्याप्त.
		101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य
		99 देवता पर्याप्त
	गति 553	(5 अनुत्तर देव के अपर्याप्त व पर्याप्त छोड़कर) सभी
32. मांडलिक राजा	आगति 276	श्रावक की आगति के समान
	गति 535	नै. ति. मनु. देव
		14+48+303+170
		(9 ग्रैवेयक व 5 अनुत्तर के
		अपर्याप्त व पर्याप्त छोड़कर)
33. स्त्रीवेद	आगति 371	नैरयिक 7, तिर्यञ्च 48, मनुष्य 217, देव 99
	गति 561	सातवीं पृथ्वी के अपर्या., पर्या. छोड़कर शेष सभी
34. पुरुष वेद	आगति 371	स्त्री वेद के समान
	गति 563	सभी में जाते हैं।
35. नपुंसक वेद	आगति 285	नैरयिक 7, तिर्यञ्च 48, मनुष्य 131 (30+101 सम्मूर्च्छिम)
		देवता 99
	गति 563	सभी में जाते हैं।
36. गर्भज जीव	आगति 285	उपरोक्त नपुंसक वेदवत्
	गति 563	सभी में जाते हैं।
37. नोगर्भज जीव	आगति 329	तिर्यञ्च 48, मनु. 217 (अपर्या. युगलिक छोड़कर)
		64 देव (भ.25, वा. 26, ज्यो. 10, 1-2 देव + पहली किल्विषी)
	गति 395	असंज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय की गति के समान

3. दस मुण्डन

मुण्डन- शब्द का अर्थ अपनयन अर्थात् त्यागना, दूर करना है। यह मुण्डन द्रव्य और भाव से दो प्रकार का है। सिर के बालों को अलग करना द्रव्य मुण्डन है तथा 5 इन्द्रियों के 240 विकारों को और कषायों को दूर करना भाव मुण्डन है। इस प्रकार द्रव्य और भाव मुण्डन धर्म से युक्त पुरुष मुण्ड कहलाता है। (स्थानांग सूत्र)

1. श्रोतेन्द्रिय-मुण्डन
2. चक्षुरिन्द्रिय-मुण्डन
3. घ्राणेन्द्रिय-मुण्डन
4. रसनेन्द्रिय-मुण्डन
5. स्पर्शेन्द्रिय -मुण्डन
6. क्रोध-मुण्डन
7. मान-मुण्डन
8. माया-मुण्डन
9. लोभ-मुण्डन
10. सिर-मुण्डन।

-----●-----

4. मुश्किल के बोल

1. आठ कर्मों में मोहनीय कर्म जीतना मुश्किल।
2. पाँच महाव्रत में सत्य महाव्रत पालना मुश्किल।
3. तीन योग में मन योग जीतना मुश्किल।
4. पाँच इन्द्रिय में रसना इन्द्रिय जीतना मुश्किल।
5. छः काया में वायुकाय के जीव की रक्षा करना मुश्किल।
6. भरी जवानी में शील पालना मुश्किल।
7. कृपण द्वारा दान देना मुश्किल।
8. बलवान द्वारा क्षमा करना मुश्किल।

-----●-----

5. शिक्षार्थी के आठ गुण

1. हास्य क्रीड़ा न करे।
2. इन्द्रियों को वश में रखने का अभ्यास करे।
3. किसी के मर्म तथा दोषों को प्रकट न करे।
4. सदाचार का ध्यान रखे।
5. अनाचार का सेवन न करे।
6. रसना लोलुपी न हो।
7. क्रोध से सदा दूर रहे।
8. सत्य बात को स्वीकार करने में सदा तत्पर रहे।

-(श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन 11, गाथा 4 व 5)

-----●-----

6. शिक्षा के अयोग्य

1. अहंकारी
2. क्रोधी
3. प्रमादी
4. रोगी
5. आलसी

-(श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन 11, गाथा 3)

-----●-----

कथा विभाग

1. महासती राजीमती

शौरीपुर में अंधकवृष्टि नामक राजा राज्य करते थे। उनके दस पुत्र थे जिनमें सबसे बड़े थे समुद्रविजय एवं सबसे छोटे थे वसुदेव। समुद्रविजय के चार पुत्र थे- जिनमें अरिष्टनेमि (नेमिकुमार) सबसे तेजस्वी एवं पराक्रमी थे। वसुदेव के पुत्रों में बलभद्र एवं श्रीकृष्ण प्रमुख थे।

अंधकवृष्टि के भाई भोजकवृष्टि मथुरा में राज्य करते थे। उनके दो पुत्र थे-उग्रसेन एवं देवक। देवक की पुत्री देवकी श्रीकृष्ण की माता थी। उग्रसेन के पुत्रों में कंस का नाम मुख्य है तथा पुत्रियों में सत्यभामा एवं राजीमती का।

नेमिकुमार अविवाहित थे और अपूर्व पराक्रम के धनी थे। वीरता के साथ-साथ उनके हृदय में करुणा का अपार स्रोत बहता था। उनका हृदय संसार से विरक्त था। माता-पिता एवं श्रीकृष्ण की हार्दिक इच्छा अरिष्टनेमि का विवाह करने की थी। अत: श्रीकृष्ण ने नेमिकुमार को विवाह के लिए तैयार कर लिया और उग्रसेन राजा की पुत्री, सुकुमारता एवं सुंदरता की मूर्ति राजुल (राजीमती) के साथ उनका संबंध निश्चित कर दिया। राजुल की प्रसन्नता का पार नहीं था।

पशुओं को अभयदान देकर अरिष्टनेमि लौट गए-

अरिष्टनेमि की बारात मथुरा के महलों की ओर बढ़ रही थी। पर्वत के समान ऊँचे गजराज पर आरूढ़ वरराज अरिष्टनेमिजी की दृष्टि विशाल बाड़ों और पिंजरों में घिरे पशुओं पर पड़ी। बहुत बड़ी संख्या में संगृहित वे प्राणी भयाक्रान्त होकर चीत्कार कर रहे थे। उनकी आवाज बारात के सदस्यों के विनोदपूर्ण वातावरण को लाँघ कर, वरराज अरिष्टनेमि के कानों तक पहुँची। उन्होंने महावत से कहा- 'इन पशुओं को बंदी क्यों बनाया गया है? ये सभी सुखपूर्वक वन में विचरने वाले प्राणी हैं। इन्हें भी सुख प्रिय और दु:ख अप्रिय है। ये भयभीत एवं दु:खी दिखाई दे रहे हैं? क्या कारण है इन्हें बंधन में डालकर दु:खी करने का?'

'स्वामिन्! ये सभी प्राणी आपकी इस बारात के भोजन के लिए हैं। मृत्युभय से भयभीत होकर ये चिल्ला रहे हैं।'

'सारथी! मुझे उन बाड़ों के पास ले चलो'- कुमार ने कहा। 'वरराज

ने पशुओं का समूह देखा। सभी पशु-पक्षी उन्हीं की ओर देखकर करुणाजनक पुकार कर रहे थे। कुमार का हृदय दया से भर गया। उन्होंने कहा- 'जाओ सारथी! इनके बंधन तोड़कर स्वतंत्र कर दो।'

सारथी ने आज्ञा का पालन किया। सभी जीवों के बंधन खोल दिए गए। अभयदान पाकर वे सभी जीव हर्षोन्मत्त हो, वन में चले गए, पक्षी उड़ गए। इधर पशु-पक्षी मुक्त हो रहे थे और उधर अरिष्टनेमिजी का चिंतन चल रहा था-'मनुष्य कितना क्रूर बन गया है। अपनी रस लोलुपता पूर्ण करने के लिए दूसरे असहाय जीवों के प्राण लेने को तत्पर हो जाता है। मेरे लग्न पर हजारों पशु-पक्षियों की हत्या? धिक्कार है ऐसे लग्न को। नहीं करना मुझे विवाह। यहीं से लौट चलना चाहिए। उत्कृष्ट विरक्ति भावना के साथ हिंसा को रोकने हेतु वे वहाँ से लौट गए।

जीवों के बंधनमुक्त होने की प्रसन्नता में वरराज अरिष्टनेमि कुमार ने अपने कुण्डल आदि आभूषण सारथी को प्रदान कर आज्ञा दी-

सारथी! लौट चलो और बारात लौट गई।

'जिस प्रकार ये हजारों पशु पक्षी, बंधन में पड़कर छटपटा रहे थे और मुक्त होकर प्रसन्न हुए, उसी प्रकार मैंने भी आठ कर्म रूपी बंधन में पड़कर अनंत दुःख भोगे। मैं अब किसी भी बंधन में बंधना नहीं चाहता। मुझे मुक्त होना है। मेरा हित बंधन में नहीं, मुक्ति में है। निर्मोह होना ही सुख और शांति का परम एवं अक्षय निवास है। मैं मोह को नष्ट करने के लिए निर्ग्रंथ धर्म का आचरण करूँगा। यह मेरा अटल निश्चय है।'

यथासमय लोकान्तिक देव अरिष्टनेमि के समक्ष उपस्थित हुए और प्रणाम करके बोले- 'भगवन्! अब धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करके जीवों का उद्धार करो।' कुमार ने देवों की बात स्वीकार की और उन्हें विदा किया। इसके बाद इन्द्र की आज्ञा से जृम्भक देवों ने प्रचुर द्रव्य लाकर भण्डार भरपूर भरे और भगवान अरिष्टनेमि प्रतिदिन वर्षीदान देने लगे।

राजीमती को शोक और विरक्ति

'प्रियतम लौट गए'- यह जानते ही राजीमती मर्माहत होकर, कटी हुई पुष्पलता के समान भूमि पर गिर पड़ी। उसके हृदय मंदिर में जिन महत्वाकांक्षाओं के भव्य भवन बन गए थे, वे सब कुछ ही समय में मिट्टी में मिल गए। वह संज्ञा शून्य हो अचेत पड़ी थी। उसके गिरते ही सखियाँ

भयभीत हो गई। शीतल-सुगंधित जल के सिंचन और वायु संचार से राजीमती सचेतन हुई और उठकर बैठ गई।

सभी सखियाँ दिग्मूढ़ होकर स्तब्ध खड़ी थीं। वे राजीमती को समझाने का प्रयत्न करने लगी। तब राजीमती ने कहा- मेरे हृदय में जो एक बार प्रवेश कर गया, वही मेरा पति है। मैं अपने मन से तो कभी की उनकी हो चुकी। अब इस हृदय में से उन्हें हटा कर दूसरे को स्थान देने की बात ही मैं सुनना नहीं चाहती। मेरे वे प्राणेश्वर सामान्य पुरुष नहीं हैं। अलौकिक महापुरुष हैं। उनके समान उत्तम पुरुष इस संसार में कोई है ही नहीं। मैंने तो अपना प्रियतम उन्हें मान लिया है। यहां उन्होंने ठुकराई तो क्या हुआ? भोग की साथिन नहीं, योग की साथिन रहूँगी। अब मैं भी उन्हीं के पथ पर चलूँगी। जब प्रियतम निर्मोही है, तो मैं मोह करके दु:खी क्यों बनूँ और क्यों न मोहबंधन तोड़ दूँ?

राजीमती के हृदय में शुद्ध प्रेम था इसलिए भगवान की आत्मा के साथ-साथ अपनी आत्मा को ऊँची उठाने का प्रयत्न कर रही थी। वह भी प्रभु के समान अपने प्रेम को विश्वप्रेम में बदल रही थी।

रथनेमि की राजीमती पर आसक्ति

श्री नेमिनाथजी के बिना लग्न किए लौट जाने के कुछ काल पश्चात् उनका छोटा भाई रथनेमि, राजीमती के सौंदर्य पर मोहित हो गया और उसने राजीमती से कहा-मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ। रथनेमि की बात सुनकर राजीमती स्तंभित रह गई। उसने शांतिपूर्वक रथनेमि को समझाया परन्तु वह तो कामासक्त था, समझाने का उस पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। दूसरे दिन रथनेमि पुनः राजीमती के पास आया। राजीमती ने उसका कामोन्माद उतार कर विरक्ति उत्पन्न करने के लिए एक प्रभावोत्पादक उपाय सोचा और उसके वहां पहुंचने से पूर्व ही भरपेट-आकण्ठ दूध पिया और जब रथनेमि आया तो राजीमती ने मदनफल खा लिया। इसके बाद उसने रथनेमि से कहा-'कृपया वह स्वर्ण थाल ला दीजिए। वह प्रसन्नतापूर्वक उठा। उसने इसे राजीमती का अनुग्रह माना। उसने सोचा- 'राजीमती मेरे साथ भोजन करना चाहती है।' थाल लाकर राजीमती के सामने रख दिया। उस थाल में राजीमती ने वमन करके पिया हुआ दूध निकाल दिया और रथनेमि से कहा- 'लो, इस दूध को पी लो।'

रथनेमि घबराया। वह समझ नहीं सका कि राजीमती क्या कह रही है? उसने पूछा- 'क्या कहा? क्या मैं इस दूध को पी लूँ?' राजीमती ने -'हाँ' कहा, तो वह तमक कर बोला:-

'यह कौनसी शिष्टता है?'

'क्यों, क्या यह पीने योग्य नहीं हैं? क्या तुम समझते हो कि वमन किया हुआ मिष्ठान्न भी अभक्ष्य हो जाता है?'- राजीमती ने पूछा।

'तुम कैसी बात करती हो?'- रथनेमि बोला-'आबाल वृद्ध सभी जानते हैं कि वमन की हुई वस्तु मनुष्य मात्र के लिए अभक्ष्य होती है।'

'यदि तुम इतनी समझ रखते हो, तो यह क्यों नहीं समझते कि मैं भी तुम्हारे ज्येष्ठ-बंधु द्वारा परित्यक्ता हूँ। मुझ वमन की हुई का उपभोग करने की कामना ही क्यों कर रहे हो? अरे! उस लोकोत्तम महापुरुष के भाई होकर भी तुम ऐसी अधम मनोवृत्ति रखते हो? ऐसे दुष्टतापूर्ण विचारों को हृदय में से निकाल कर शुद्ध बनाना चाहिए।

सती की फटकार खाकर रथनेमि निराश हुआ और उदास होकर लौट गया। राजीमती ज्ञान के अवलम्बन से अपना समय व्यतीत करने लगी।

दीक्षा, केवलज्ञान और तीर्थंकर-पद

श्री अरिष्टनेमि कुमार स्वर्ण दान दे रहे थे और अभाव-पीड़ित जनता लाभान्वित हो रही थी। वर्षीदान का काल पूर्ण होने पर और 300 वर्ष गृहवास में रहकर श्रावण-शुक्ला छठ के दिन भगवान अरिष्टनेमि का निष्क्रमणोत्सव हुआ। भगवान तप संयम से अपनी आत्मा को पवित्र करते हुए भूतल पर विचरने लगे। प्रव्रजित होने के 54 दिन बाद सहस्राम वन में तेले के तप सहित ध्यान करते हुए, आश्विन की अमावस्या के दिन प्रात:काल चित्रा नक्षत्र में भगवान के घाती कर्म नष्ट हो गए और वे केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो गए। भगवान को केवलज्ञान होते ही देवों ने भव्य समवशरण की रचना की तथा भगवान ने धर्मदेशना दी।

भगवान का धर्मोपदेश सुनकर सर्वप्रथम वरदत्त नरेश संसार से विरक्त हुए और भगवान से सर्वविरति रूप निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या अंगीकार की और उसके साथ दो हजार क्षत्रियों ने भी दीक्षा अंगीकार की। उसी समय यक्षिणी आदि अनेक राजकुमारियाँ भी प्रव्रजित हुई। यक्षिणी को प्रभु ने प्रवर्तिनी पद प्रदान

किया। समुद्रविजय आदि दस दशार्ह ने श्रावक धर्म अंगीकार किया। महारानी शिवादेवी, देवकी आदि ने श्राविका धर्म अंगीकार किया। इस प्रकार भगवान ने चतुर्विध तीर्थ की स्थापना की और तीर्थंकर नामकर्म सार्थक किया।

राजीमती की दीक्षा

भगवान अरिष्टनेमि की दीक्षा का समाचार राजीमती को भी मालूम पड़ा। वह विचार में पड़ गई, अब मुझे क्या करना चाहिए? इस प्रकार विचार करते-करते उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उसे मालूम पड़ा कि मेरा और भगवान का प्रेम संबंध पिछले आठ भवों से चला आ रहा है। इस नवें भव में भगवान का संयम अंगीकार करने का निश्चय पहले से था। मुझे प्रतिबोध देने की इच्छा से ही उन्होंने विवाह का आयोजन स्वीकार कर लिया था। अब मुझे भी शीघ्र संयम अंगीकार करके उनका अनुसरण करना चाहिए। इस निश्चय पर पहुंचने से उसके मुख पर प्रसन्नता छा गई। राजीमती ने माता-पिता से प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए आज्ञा प्राप्त कर निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या स्वीकार की। राजीमती के साथ-साथ सात सौ सखियों ने भी दीक्षा ग्रहण की। महाराज उग्रसेन तथा श्रीकृष्ण ने उनका निष्क्रमण महोत्सव मनाया। राजकुमारी राजीमती साध्वी राजीमती बन गई। श्रीकृष्ण तथा सभी यादवों ने उसे वंदना की। अपनी शिष्याओं सहित राजीमती तप संयम की आराधना तथा जनकल्याण करती हुई विचरने लगी। थोड़े ही समय में वह बहुश्रुत हो गई।

रथनेमि चलित हुए

प्रव्रज्या ग्रहण करने के बाद महासती राजीमतीजी अन्य साध्वियों के साथ भगवान अरिष्टनेमिजी को वंदन करने के लिए रेवताचल पर्वत पर गई। पर्वत चढ़ते हुए अचानक वर्षा प्रारम्भ हो गई और साध्वियाँ पानी से भीगने लगी। अपने को वर्षा से बचाने के लिए साध्वियाँ इधर-उधर आश्रयस्थान की ओर चली गई। राजीमती भी एक अंधकारपूर्ण गुफा में प्रविष्ट हो गई। उसने अपने भीगे हुए वस्त्र उतारे और सूखने के लिए फैला दिए। उस गुफा में पहले से ही मुनि रथनेमि उपस्थित थे। अंधकार के कारण सती राजीमती को दिखाई नहीं दिए। जब रथनेमि की दृष्टि राजीमती के नग्न शरीर पर पड़ी, तो वह विचलित हो गए। उनकी धर्म-भावना एवं संयम-रूचि में परिवर्तन हो गया। दृष्टिपात मात्र से उनका सुसुप्त मनोविकार जागृत हुआ। प्रकाशपूर्ण वातावरण से आने के कारण प्रवेश करते समय राजीमती को रथनेमि दिखाई

नहीं दिया था किन्तु भीगे वस्त्र उतार कर सूखने के लिए फैलाने के बाद राजीमती ने पुनः गुफा का अवलोकन किया। उसे एक मनुष्याकृति दिखाई दी। वह भयभीत हो गई और सिमट कर अपनी बाँहों से शरीर ढँक कर बैठ गई। राजीमती को भय से काँपती हुई देखकर रथनेमि बोला-

''भद्रे! भयभीत मत हो। मैं तेरा प्रेमी रथनेमि हूँ। हे सुंदरी! मैं अब भी तुम्हें चाहता हूँ। मेरी प्रार्थना स्वीकार करो और मेरे पास आओ। देखो, भोग के योग्य ऐसा मनुष्य भव और सुंदर-तन प्राप्त होना अत्यंत दुर्लभ है। भुक्त-भोगी होने के बाद फिर अपने संयम की साधना करेंगे। तुम निःशंक होकर मुझे स्वीकार करो। तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा।''

रथनेमि को पथभ्रष्ट देखकर राजीमती संभली। उसने अपने आपको स्थिर एवं संवरित किया और अपनी उच्च जाति-कुल और शील की रक्षा करती हुई निर्भयतापूर्वक रथनेमि से बोली-

''रथनेमि! तुम भ्रम में हो। सुनो! यदि तुम रूप में वैश्रमण और लीलाविलास में नलकुबेर के समान भी हो और साक्षात् इन्द्र भी हो, तो भी मैं तुम्हें तनिक भी नहीं चाहती। मैंने भोग-कामना को वमन किए हुए पदार्थ के समान सर्वथा त्याग दिया है और आत्म-साधना में संलग्न हुई हूँ। तुम भी साधु हो। तुमने भी निर्ग्रंथ-धर्म स्वीकार किया है। किन्तु तुम्हारी वासना नष्ट नहीं हुई। तुम्हें अपने कुल का भी गौरव नहीं है। अगंधन कुल का सर्प जलती हुई आग में पड़कर भस्म हो जाता है, परन्तु मन्त्रवादी की इच्छानुसार, अपना त्यागा हुआ विष फिर नहीं चूसता, किन्तु तुम साधुवेश में पापी हो। तुम्हें अपने उत्तम कुल का भी गौरव नहीं है। तुम समुद्रविजयजी के पुत्र और त्रिलोकपूज्य भगवान अरिष्टनेमिजी के बंधु होकर भी ऐसे नीचतापूर्ण विचार रखते हो? धिक्कार है, तुम्हारे कलंकित जीवन को! ऐसे कुत्सित जीवन से तो तुम्हारा मर जाना ही उत्तम है।''

''स्त्री को देखकर कामासक्त होने वाले हे रथनेमि! तुम संयम का पालन कैसे कर सकोगे? ग्राम-नगरादि में विचरण करते हुए तुम जहाँ-जहाँ स्त्रियों को देखोगे, वहीं विचलित होकर विकारी बनते रहोगे, तो तुम्हारी दशा उस हड-वृक्ष जैसी होगी, जो वायु के झोंके से हिलता हुआ अस्थिर होता है।''

''वास्तव में तुम संयमधारी नहीं, भारवाहक हो। जिस प्रकार ग्वाला,

गो-वर्ग का स्वामी नहीं होता और भंडारी, धन का स्वामी नहीं होता, उसी प्रकार तुम भी संयम रूपी धन के अधीश्वर नहीं हो, चाकर हो, भारवाहक हो। संयमधारी निर्ग्रंथ कहलाकर भी असंयमी मानस रखने वाले रथनेमि! तुम्हें धिक्कार है। तुम कुल-कलंक हो, निर्लज्ज हो, घृणित हो। तुम्हारा जीवन व्यर्थ है।''

भगवती राजीमती के ऐसे ओजपूर्ण प्रभावशाली वचनों ने अंकुश का काम किया। उससे रथनेमि का मद उतर गया। उसका कामोन्माद नष्ट हो गया। राजीमती के रूप दर्शन से उसमें जो विषय-रोग उत्पन्न हुआ था, वह इन सुभाषित शब्द रूपी रसायन से दूर हो गया। स्थान-भ्रष्ट होकर भागा हुआ मन्दोन्मत्त गजराज फिर अपने स्थान पर आकर चुपचाप स्थिर हो गया।

रथनेमि उत्तम-जाति और कुल से युक्त था। उदय-भाव की प्रबलता से वह डगमगा गया था किन्तु भगवती राजीमती के वचनों ने उसे आत्म-भान कराया। वह संभल गया। भगवान के समीप आकर उसने अपने पाप की आलोचना की और प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि की। फिर वह धर्म-साधना में साहसपूर्वक जुट गया। अब उसका आत्म-वीर्य आत्म-विशुद्धि ही में लगा था। उसने क्रोधादि कषाय और इन्द्रियों के विषयों पर विजय प्राप्त की। वह वीतराग सर्वज्ञ बना और सिद्ध पद प्राप्त किया।

भगवती राजीमती भी तप संयम का पालन कर वीतराग सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बनी तथा भगवान अरिष्टनेमि से 14 दिन पूर्व मुक्ति प्राप्त कर परम सुख में लीन हुई।

2. मेघकुमार

परिचय- राजगृह नगर में श्रेणिक राजा राज्य करता था। श्रेणिक राजा की छोटी रानी का नाम धारिणी था। एक समय रात्रि के पिछले प्रहर में स्वप्न में एक सुंदर, सुडौल, श्वेत, सौम्य आकृति वाला हाथी आकाश से उतरकर क्रीड़ा करता हुआ रानी के मुख में प्रवेश कर गया। पश्चात् वह जागृत हो गई। राजा ने कहा-इस शुभ स्वप्न के प्रभाव से पुण्यशाली प्रतापी बालक का जन्म होगा। यह सुनकर रानी बहुत प्रसन्न हुई।

दूसरे दिन प्रात:काल स्वप्न पाठकों को बुलाकर राजा ने स्वप्न का अर्थ पूछा। उन्होंने बतलाया 'रानी को एक कुलीन और भविष्य में राजा या श्रेष्ठ मुनि बनने वाला पुत्र होगा। राजा रानी को यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

'मेघ' नामकरण-

गर्भ के तीसरे महिने में, जबकि मेघ-वर्षा का काल नहीं था तब रानी को दोहद उत्पन्न हुआ कि 'वर्षाकाल का दृश्य उपस्थित हो और मैं महाराजा श्रेणिक के साथ हाथी पर चढ़कर राजगृह के पर्वतों के पास वर्षाकाल का दृश्य देखूं। यह दोहद पूर्ण होना असंभव समझ कर रानी दिनों-दिन सूखने लगी।

महाराजा श्रेणिक को दासियों के द्वारा जब यह जानकारी हुई तो वे बहुत चिंतित हुए। अंत में श्रेणिक के ही पुत्र 'अभयकुमार' जो बड़े बुद्धिशाली और राजा के प्रधानमंत्री भी थे उन्होंने देव की सहायता से अपनी छोटी माता का यह असंभव दोहद पूरा करवाया।

गर्भकाल पूर्ण होने पर महारानी ने एक सर्वांग सुंदर बालक को जन्म दिया। महाराजा श्रेणिक ने उसका जन्मदिवस बहुत उत्सव से मनाया और बारहवें दिन 'माता को अकाल में मेघ' आदि का दोहद आया था, इसलिए उसका नाम मेघकुमार रखा।

लगन-

आठ वर्ष के हो जाने पर महाराजा ने मेघकुमार को कालाचार्य के पास भेजकर उन्हें 72 कलाएं सिखाईं। पश्चात् योग्य वय वाले हो जाने पर महाराजा ने आठ सुंदर कन्याओं के साथ उनका पाणिग्रहण कराया।

दीक्षा एवं पूर्वभव

एक समय भगवान महावीर स्वामी राजगृह नगर के बाहर गुणशील नामक उद्यान में पधारे। भगवान का आगमन सुनकर प्रजाजन, राजा और मेघकुमार भगवान को वंदना करने के लिए गए। भगवान ने धर्मोपदेश फरमाया। उपदेश सुनकर मेघकुमार को संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया।

घर आकर माता-पिता से दीक्षा लेने की आज्ञा मांगी। बड़ी कठिनाई के साथ माता-पिता से दीक्षा की आज्ञा प्राप्त की। राजा श्रेणिक ने बड़े समारोह और धूमधाम के साथ दीक्षा महोत्सव किया। मेघकुमार दीक्षा लेकर ज्ञानाभ्यास करने लगे। रात्रि के समय जब सोने का वक्त आया तब मेघकुमार का बिछौना सब साधुओं के अंत में किया गया क्योंकि दीक्षा में वे सबसे छोटे थे। रात्रि में इधर-उधर आने जाने वाले साधुओं के पादसंघट्टन से मेघकुमार को नींद नहीं आई। नींद न आने से मेघकुमार अतिखेदित हुए और विचार करने लगे कि प्रात:काल ही भगवान की आज्ञा लेकर ली हुई इस प्रव्रज्या को छोड़कर वापिस अपने घर चला जाऊँगा। ऐसा विचार कर प्रात:काल होते ही मेघकुमार भगवान के पास आज्ञा लेने को आए। मेघकुमार के विचारों एवं उनके मनोगत भावों को केवलज्ञान से जानकर भगवान फरमाने लगे कि हे मेघ! तुम इस जरा से कष्ट से घबरा गए। तुम अपने पूर्वभव को तो याद करो। पहले हाथी के भव में वन में लगी हुई दावानल को देखकर तुम भयाक्रान्त होकर वहां से भागने लगे किन्तु आगे जाकर तालाब के कीचड़ में बहुत बुरी तरह से फंस गए और बहुत कोशिश करने पर भी निकल न सके। इतने में एक दूसरा हाथी आ गया और उसके दंत प्रहार से मर कर फिर दूसरे जन्म में भी हाथी हुए। एक वक्त जंगल में लगी हुई दावानल को देखकर तुम्हें जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। ऐसे दावानल से बचने के लिए गंगा नदी के दक्षिण किनारे पर एक योजन का लम्बा चौड़ा एक मंडल बनाया। एक वक्त जंगल में फिर आग लगी उससे बचने के लिए फिर तुम अपने मंडल (घेरा) में आए। वहाँ पहले से ही बहुत से पशु-पक्षी आकर ठहरे हुए थे। मंडल जीवों से खचाखच भरा हुआ था। बड़ी मुश्किल से तुम्हें थोड़ी सी जगह मिली। कुछ समय बाद अपने शरीर को खुजलाने के लिए तुमने अपना पैर उठाया। इतने में दूसरे बलवान प्राणियों द्वारा धकेला हुआ एक शशक (खरगोश) उस जगह आ पहुँचा। शरीर को खुजला कर जब तुम

अपना पैर नीचे रखने लगे तो एक शशक को बैठा हुआ देखा। तब-**पाणाणुकंपाए, भूयाणुकंपाए, जीवाणुकंपाए, सत्ताणुकंपाए।** अर्थात्-प्राण, भूत, जीव, सत्व की अनुकम्पा से तुमने अपना पैर ऊपर अधर-अधर ही रखा किन्तु नीचे नहीं रखा। उन प्राण (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय), भूत (वनस्पतिकाय), जीव (पंचेन्द्रिय जीव) और सत्व (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय) की अनुकम्पा करके तुमने संसार परित्त किया और मनुष्य आयु का बंध किया। अढ़ाई दिन में वह दावानल शांत हुआ। सब पशु वहां से निकल कर चले गए। तुमने चलने के लिए अपना पैर लम्बा किया किन्तु तुम्हारा पैर अकड़ गया जिससे तुम एकदम पृथ्वी पर गिर पड़े और शरीर में अत्यंत वेदना उत्पन्न हुई। तीन दिन तक वेदना को सहन कर सौ वर्ष की आयुष्य पूर्ण करके तुम धारिणी रानी के गर्भ में आए।

हे मेघ! तिर्यञ्च के भव में प्राण, भूत, जीव, सत्व पर अनुकम्पा कर तुमने पहले कभी नहीं प्राप्त हुए सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति की। हे मेघ ! अब तुम विशाल कुल में उत्पन्न होकर गृहस्थावास को छोड़ साधु बने हो तो क्या साधुओं के पादस्पर्श से होने वाले जरा से कष्ट से घबरा गए?

भगवान के उपरोक्त वचनों को सुनकर मेघकुमार को जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। फिर मेघकुमार ने संयम में दृढ़ होकर भगवान की आज्ञा से भिक्षु की बारह प्रतिमा अंगीकार की और गुणरत्न संवत्सर वगैरह तप किए। अंत में संलेखना संथारा करके विजय नामक अनुत्तर विमान में 33 सागरोपम की स्थिति वाला देव हुआ। वहां से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर संयम धारण कर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होंगे।

3. थावच्चापुत्र

द्वारिका नगरी में एक थावच्चा नामक गाथापत्नी रहती थी। उसका थावच्चापुत्र नामक पुत्र था जो अत्यंत सुकुमार व सुंदर था। वह बाल्यकाल से ही चिंतनशील स्वभाव का था। वह जो भी देखता, सुनता, उसके संबंध में गहराई से चिंतन करता। जब तक सही तथ्य का परिज्ञान नहीं हो जाता तब तक उसे चैन नहीं पड़ता।

थावच्चापुत्र एक दिन अपनी अट्टालिका पर खड़ा था। उसके कान में मधुर-मधुर गीत सुनाई दिए। वह उन्हें सुनता गया। उसे बड़ा अच्छा लगा। पर वह जान न सका कि गीत का भावार्थ क्या है और कहाँ से वह मधुर स्वर लहरी आ रही है? वह अपनी माता के पास आया और सरलता से पूछने लगा, 'माँ! ये गीत कहाँ गाए जा रहे हैं?'

माँ ने कहा- 'बेटा! पड़ोसी के घर पुत्र का जन्म हुआ है। उसकी खुशी में ये गीत गाए जा रहे हैं।'

'अच्छा! पुत्र उत्पन्न होने पर इतनी खुशी होती है?'

'हाँ बेटा!' माता ने कहा।

'तो क्या मैं पैदा हुआ था, तब भी इसी तरह गीत गाए गए थे?'

थावच्चापुत्र अपने बचपन के स्वाभाविक भोलेपन के साथ पूछ बैठा।

माता ने कहा- 'वत्स'! जब तुम्हारा जन्म हुआ था तब एक दिन ही नहीं कई दिन तक, इससे भी ज्यादा अच्छे गीत गाए गए थे। खुशियाँ मनाई गई थीं।

'माँ! मेरे कान उन गीतों को सुनने के लिए लालायित हैं।'

वह भागा, पुनः छत पर आया। ध्यान से गीत सुनने लगा। पर अब उन गीतों में वह मधुरता नहीं थी। कान उन्हें सुनना नहीं चाहते थे। वह असमंजस में पड़ गया। कुछ समझ में नहीं आया। वह पुनः दौड़ा-दौड़ा माता के पास आया और पूछने लगा-

'माँ! गीतों में इतना अंतर क्यों हो गया है? उनकी मधुरता क्यों नष्ट हो गई है? अब ये गीत तो कानों को बड़े अप्रिय लगने लगे हैं। पुत्र की यह बात सुनकर माता की आँखों में आँसू आ गए। वह बोली-'बेटा! हमारे उस पड़ौसी का पुत्र मर गया।'

'अभी जन्मा और अभी मर गया?' पुत्र ने कहा।

'हाँ बेटा! मरना-जीना किसी के वश की बात नहीं है। वह जन्मा तब गीत गाए जा रहें थे और अब मर गया तो रो रहे हैं, विलाप कर रहे हैं।'

'तो माँ! क्या तुम भी मरोगी?'

'हाँ बेटा! मरना सबको पड़ता है। एक दिन मैं भी मरूँगी।'

'क्या मुझे भी मरना पड़ेगा?'

'बेटा, ऐसा प्रश्न नहीं करना चाहिए।'

'माँ! क्या आपत्ति है मुझे बताने में। क्या मुझे भी मरना पड़ेगा?'

'हाँ, एक दिन तुमको भी मरना होगा। इस संसार में कोई भी प्राणी अमर नहीं होता।'

'क्या मृत्यु से बचने का कोई उपाय भी है, माँ?'

'हाँ बेटा ! इसका उपाय है। जो व्यक्ति साधना के द्वारा अपने कर्मों को नष्ट कर देता है, वह मौत से बच जाता है। फिर वह न जन्मता है और न मरता है। वह अमर हो जाता है।'

'माँ! साधना के लिए क्या करना होता है?'

'बेटा ! मुनि-जीवन, साधना करने के लिए उचित अवसर देता है। मुनि-जीवन में ध्यान की उत्कृष्ट साधना करने वाला शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।'

थावच्चापुत्र का मन वैराग्य से भर गया, जन्म-मरण से छूटने की उसकी भावना तीव्र हो गई। वैराग्य बढ़ता गया।

कुछ समय बाद बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमिजी शहर में पधारे। थावच्चापुत्र भगवान के दर्शन करने गया। भगवान की अमृतमय वाणी का उस पर जादू का-सा असर हुआ। उसका वैराग्य तीव्र हो उठा। वह भगवान के पास दीक्षा ग्रहण करने के लिए लालायित हो उठा। आकर माता के चरण स्पर्श कर प्रव्रज्या ग्रहण करने की आज्ञा मांगी। माता ने सांसारिक सुखों के अनेक प्रलोभनों से उसे समझाने का प्रयत्न किया, परन्तु उस विरक्तात्मा को अपने निश्चय से चलित नहीं कर सकी। आखिर माता ने एक भव्य महोत्सव के साथ पुत्र का दीक्षा महोत्सव कर प्रव्रजित करने का निश्चय किया और फिर कृष्ण वासुदेव के पास जाकर अपने पुत्र का दीक्षा महोत्सव राजसी शोभा के

साथ मनाने का आग्रह किया। वासुदेव अपनी ओर से दीक्षा सत्कार का वचन देकर उसके भवन पधारे और थावच्चापुत्र के वैराग्य की परीक्षा लेने की भावना से कहा- 'हे देवानुप्रिय। तुम दीक्षा न लेकर मेरे महलों में रहकर इच्छित भोग भोगो।'

'महाराज! क्या आप मुझे जरा (बुढ़ापा), रोग और मृत्यु से बचा सकेंगे?' थावच्चापुत्र ने प्रश्न किया।

श्री कृष्ण ने कहा- 'वत्स! जरा, रोग और मृत्यु का निवारण अशक्य है। बड़े-बड़े इन्द्र भी इसका निवारण करने में असमर्थ है। इसका निवारण तो राग-द्वेष रूपी कर्म की जड़ काटने से ही संभव होगा।' तब थावच्चापुत्र ने दृढ़तापूर्वक कहा- 'महाराज! मैं इसी साधना में तत्पर होने के लिए प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूं।'

श्री कृष्ण इस जवाब से निरुत्तर हो गए और थावच्चापुत्र की दृढ़ता से प्रभावित होकर उन्होंने द्वारिका में घोषणा करवा दी कि- थावच्चापुत्र संसार से विरक्त होकर भगवान नेमिनाथ के समीप प्रव्रजित होना चाहते हैं जो कोई भी इनके साथ भगवान के समीप प्रव्रज्या ग्रहण करेगा उसके पीछे रहे हुए उसके परिवार का सर्वप्रकार से पालन-पोषण, संरक्षण कृष्ण वासुदेव करेंगे। थावच्चापुत्र से अनुराग होने के कारण उनके साथ एक हजार व्यक्ति प्रवज्या लेने को तत्पर हो गए। इस प्रकार थावच्चापुत्र अपनी बत्तीस पत्नियों को व संसार के वैभव को छोड़कर एक हजार पुरुषों के साथ भगवान अरिष्टनेमि के समीप प्रव्रज्या ग्रहण कर अणगार हो गए। पांच समिति तीन गुप्ति से संयुक्त होकर बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय पालकर अंतिम समय में एक मास की संलेखणा करके अन्त में सर्वकर्मों को क्षय करके सिद्ध, बुद्ध हो गए और जन्म, जरा, रोग, मृत्यु रूपी संसार के सर्व दु:खों से मुक्त हो गए।

1. मंगलाचरण

1. अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः,
श्री सिद्धान्तसुपालका मुनिवरा, रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मंगलम्।।

2. वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीरं बुधाः संश्रिता,
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्यं नमः।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्रीधृतिकीर्तिकान्तिनिचयो, हे वीर! भद्रं दिश।।

3. ब्राह्मी चन्दनबालिका भगवती, राजीमती द्रौपदी,
कौशल्या च मृगावती च सुलसा, सीता सुभद्रा शिवा।
कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता, चूला प्रभावत्यपि,
पद्मावत्यपि सुंदरीदिनमुखे, कुर्वन्तु नो मंगलम्।।

4. मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमप्रभुः।
मंगलं स्थूलिभद्राद्याः, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।

5. सर्वमंगल-मांगल्यं, सर्वकल्याणकारणम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयति शासनम्।।

6. तुम तरण- तारण दुःख निवारण, भविक जीव आराधनम्।
श्री नाभिनंदन जगत-वन्दन, नमो सिद्ध निरंजनम्।

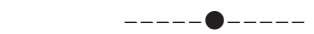

2. सुबह और शाम की

सुबह और शाम की, प्रभुजी के नाम की, फेरो एक माला॥ टेर॥

1. सकल सार नवकार मंत्र है, परमेष्ठी की माला,
नरकादिक दुर्गति का सचमुच, जड़ देती है ताला।
कर्मों का जाला, मिटे तत्काला
-फेरो एक माला

2. सुदर्शन और सीताजी ने, फेरी थी यह माला,
शूली का सिंहासन हो गया, शीतल हो गई ज्वाला।
शील जिसने पाला, सच्चा है रखवाला
- फेरो एक माला,

3. सुमिरण कर के श्रीमती ने, नाग उठाया काला,
महा भयंकर विषधर था वो, बनी फूल की माला।
धर्म का प्याला, पियो प्यारे लाला
-फेरो एक माला,

4. द्रौपदी का चीर बढ़ाया, दु:शासन मद गाला,
मैनासुंदरी श्रीपाल का, जीवन बना विशाला।
सुभद्रा ने तोला, चम्पा द्वार खोला
-फेरो एक माला

5. राजदुलारी बालकुमारी, देखो चंदनबाला,
महा भयंकर कष्ट उठाया, सिर मुंडा था मूला।
तपस्या का तेला, सब दु:ख ठेला
-फेरो एक माला

6. समय बीतता जाए मित्रों! इसको सफल बना लो,
सद्गुरु के चरणों में आ, परमेष्ठी ध्यान लगा लो।।
गुण गावे भोला, 'हरि ऋषि' बोला
-फेरो एक माला।

3. मीठे मीठे कामभोग

तर्ज: नगरी-नगरी, द्वारे-द्वारे

मीठे-मीठे कामभोग में, फंसना मत देवाणुप्पिया।
बहुत-बहुत कड़वे फल पीछे, होते हैं देवाणुप्पिया॥

1. जो वीणा के मधुर स्वर में, मुग्ध हरिण हो जाता है,
फंस जाता वह व्याघ्र जाल में, चर्म उधेड़ा जाता है,
तुझको प्रिय संगीत है कितना, कर चिंतन देवाणुप्पिया।।
मीठे-मीठे।।

2. जो ज्योति के स्वर्ण दृश्य में, मुग्ध पतंगा होता है,
जल जाता वह अग्नि चिता में, तड़फ-तड़फ कर मरता है,
तुझको प्रिय नाटक है कितना, कर मंथन देवाणुप्पिया।।
मीठे-मीठे।।

3. जो केतकी सुरभिगंध में, मुग्ध सर्प हो जाता है,
पीटा जाता लठ पत्थर से, बुरी तरह मर जाता है,
तुझको प्रिय तैलादिक कितने, करो ध्यान देवाणुप्पिया।।
मीठे-मीठे।।

4. जो पाकर एक मांस खंड को, मच्छ मुग्ध हो जाता है,
छिद जाता वह तीक्ष्ण शस्त्र से, फिर चूल्हे पर पकता है।
तुझको प्रिय भोजन है कितना, करो मनन देवाणुप्पिया।।
मीठे-मीठे।।

5. जो पानी के शीत स्पर्श में, मोहित भैंसा होता है,
खिंच जाता वह मगर दांत से, दाढ़ बीच में आता है,
तुझको प्रिय प्रासाद है कितना, कर विचार देवाणुप्पिया।।
मीठे-मीठे।।

6. जो हथिनी के कामभोग में, मोहित हाथी होता है।
गिर जाता गहरे गड्ढे में, सांकल में बंध जाता है,
तुझको प्रिय नारी है कितनी, पूर्ण सोच देवाणुप्पिया।।
मीठे-मीठे।।

7. एक-एक विषय गृद्धि का, भी जब यह फल होता है,
जो सब में आसक्त बना वह, कितना कटुक फल पाता है,
केवल कहते पारस सुन रे, हो विरक्त देवाणुप्पिया।।
मीठे-मीठे।।

-----●-----

सामान्य ज्ञान विभाग

1. लघु गौतम पृच्छा

केवल्य ज्ञान के धारक श्री भगवान महावीर स्वामीजी से श्री गौतम स्वामीजी ने विनय पूर्वक प्रश्न किए। उन प्रश्नों में से कुछ इस प्रकार है -

1. प्रश्न- भगवन्! चौदह पूर्व का सार क्या है?
   उत्तर- गौतम! चौदह पूर्व का सार नमस्कार मंत्र है।
2. प्रश्न- प्रभो! मनुष्य निर्धन और कंगाल किस पाप के उदय से होता है?
   उत्तर- गौतम! जिसने दूसरे के धन को चुराया हो, दान देते हुए को मना किया हो वह मनुष्य निर्धन और कंगाल होता है।
3. प्रश्न- भगवन्! भोग उपभोग की सामग्रियां सभी स्वाधीन होते हुए भी जो मनुष्य उन्हें भोग नहीं सकते यह किस पाप के उदय से?
   उत्तर- गौतम! जो मनुष्य दान पुण्य कर फिर उसका पश्चाताप करता है कि मैंने बहुत बुरा किया है वह जीव भोग (वह वस्तु जो एक वक्त ही काम में आ सकती हो जैसे-भोजन वगैरह) और उपभोग (जो बार-बार काम में आ सकती है जैसे वस्त्र, आभूषण वगैरह) की सामग्री स्वाधीन होते हुए भी उन्हें भोग नहीं सकता है।
4. प्रश्न- भगवन्! मनुष्य एक आँख से काणा किस पाप से होता है?
   उत्तर- गौतम! जो हरी सब्जी (वनस्पति) का अयतना एवं अविवेकपूर्वक शस्त्र आदि से छेदन-भेदन करता है, वह मनुष्य एक आँख से काणा होता है।
5. प्रश्न- भगवन्! मनुष्य किस पाप से अन्धा होता है?
   उत्तर- गौतम! शहद के छत्ते के नीचे धूम्र वगैरह का प्रयोग करता हुआ मक्षिकाओं को जलाकर छत्ता गिरा देने से मनुष्य अंधा होता है।
6. प्रश्न- भगवन्! मनुष्य किस पाप के उदय से गूंगा होता है?
   उत्तर- गौतम! छिद्रान्वेषी बनकर जो देव, गुरु की निंदा करता है, वह मनुष्य गूंगा होता है।

7. प्रश्न– भगवन्! मनुष्य किस पाप के उदय से बहरा होता है?

उत्तर– गौतम! जो लुक छिपकर दूसरे की निंदा सुनने में रत रहता हो और कपट युक्त मीठे शब्द बोलकर दूसरे के हृदय का भेद जानने में प्रयत्नशील हो वह मनुष्य बहरा होता है।

8. प्रश्न– भगवन्! मनुष्य इतना स्थूल शरीर वाला जो कि किसी प्रकार से अपना शारीरिक कार्य भी अपने हाथों से न कर सके ऐसा बेडौल शरीर किस पाप से होता है?

उत्तर– गौतम! अपने सेठ की चोरी करने से तथा अपने आप ही साहूकार बन दूसरे का धन हड़प लेने से मनुष्य बे-डीलडौल वाला स्थूल शरीरी होता है।

9. प्रश्न– भगवन्! मनुष्य कुष्ठ (कोढ़) रोग वाला किस पाप कर्म के फल से होता है?

उत्तर– गौतम! मयूर, सर्प, बिच्छू आदि को मारने से तथा जंगल में दावाग्नि लगा देने से मनुष्य कोढ़ी होता है।

10. प्रश्न– भगवन्! स्त्री, पुरुष, पुत्र, पुत्री और शिष्य आदि किस पाप के फलस्वरूप कुपात्र होते हैं?

उत्तर– गौतम! निष्कारण ही सगे स्नेहियों के साथ या दूसरे मनुष्यों के बीच में वैर को खड़ा कर देते हैं अथवा बढ़ा देते हैं वे कुपात्र होते हैं?

11. प्रश्न– भगवन्! कोई भी रोजी आदि की प्राप्ति में बाधा (विघ्न) आकर खड़ी होती हैं, वह किस पाप से होती है?

उत्तर– गौतम! जीवों को भोगोपभोग की सामग्रियां मिलती हों उनमें रोड़े अटका दिए हों तथा रोजी एवं व्यापार आदि में भी बाधा खड़ी कर दी हो, उस मनुष्य को प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति में बाधा खड़ी होती है।

12. प्रश्न– भगवन्! मनुष्य मरकर नरक में किस पाप कर्म के उदय से जाता है?

उत्तर– गौतम! जूआ खेलने से, मांस खाने से, मदिरा पीने से, वेश्या-परस्त्री गमन करने से, शिकार और चोरी करने से

मनुष्य नरक में जाता है।

13. प्रश्न- भगवन्! लक्ष्मीवान् किस पुण्य के फलस्वरूप होता है?

उत्तर- गौतम! सुपात्र (मुनि), पात्र (श्रावक), अल्पपात्र (सम्यक् दृष्टि) आदि को साताकारी आहार पानी देने से तथा अनाथ, दीन, आश्रितों को समय-समय पर उचित दान देने से मनुष्य लक्ष्मीवान् होता है।

14. प्रश्न- भगवन्! जिस मनुष्य के सत्य कहने पर भी उसके वचनों पर कोई विश्वास नहीं रखता है इसका क्या कारण है?

उत्तर- गौतम! जिस मनुष्य ने झूठी गवाही (साक्षी) दी हो उस पाप के फलस्वरूप उसके वचनों को न तो कोई सत्य ही समझता है और न उसके वचनों पर कोई विश्वास ही रखता है।

15. प्रश्न- भगवन्! मनोच्छित भोगोपभोग की सामग्रियां किस पुण्योदय से मिलती हैं?

उत्तर- गौतम! जिस मनुष्य ने दया वगैरह परोपकार खूब किया हो, उस मनुष्य को मनोच्छित भोग मिलते हैं।

16. प्रश्न- भगवन्! सुंदर रूप, लावण्य, चातुर्यता आदि की प्राप्ति किस शुभकरणी से होती है?

उत्तर- गौतम! जिनाज्ञा पूर्वक जिसने ब्रह्मचर्य पाला हो और तपस्या की हो वह सुंदर रूप सम्पदादि पाता है।

17. प्रश्न- भगवन्! स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति किस से होती है?

उत्तर- गौतम! जिस मनुष्य ने सम्यक् प्रकार से तप-संयम की आराधना की हो, वह मनुष्य स्वर्ग और मोक्ष के सुखों को प्राप्त करता है।

18. प्रश्न- भगवन्! मनुष्य को दु:खमयी दीर्घ जीवन किस दुर्भाग्य से मिलता है?

उत्तर- गौतम! चलते फिरते त्रस जीवों की हिंसा करने से, मिथ्या भाषण करने से और मुनि को असाताकारी आहार पानी देने से मनुष्य को दु:खमयी दीर्घ जीवन मिलता है।

19. प्रश्न- भगवन्! मनुष्य को सुखमयी दीर्घ जीवन किस पुण्य-फल से

मिलता है?

उत्तर– गौतम! त्रस जीवों की रक्षा करने से, सत्य भाषण करने से और मुनियों को निर्दोष साताकारी आहार पानी देने से मनुष्य को सुखमयी दीर्घ जीवन मिलता है।

20. प्रश्न– भगवन्! बहुत से ऐसे मनुष्य हैं जिनको भय होता ही नहीं है, वह किस पुण्योदय के फल स्वरूप?

उत्तर– गौतम! भय से भयभीत जीवों को निर्भय किया हो अर्थात् अभयदान दिया हो वह निर्भय होता है।

21. प्रश्न– भगवन्! मनुष्य बलवान किन शुभ कर्मों से होता है?

उत्तर– गौतम! जिसने वृद्ध, तपस्वी और व्याधि वाले की खूब वैयावृत्य (सेवा) की हो वह मनुष्य बलवान होता है।

22. प्रश्न– भगवन्! जिसके वचनों में मधुरता टपकती हो सभी उसके वचनों को सुनकर आनंद मनाते हैं। किस शुभ कर्म के फल स्वरूप?

उत्तर– गौतम! सारे जीवन में जिसने सत्य भाषण का ही प्रयोग किया हो वह प्रिय वचनी होता है। उसके वचन श्रवण कर सभी आनन्दित होते हैं।

23. प्रश्न– भगवन्! कोई मनुष्य ऐसा होता है जो सभी को वल्लभ लगता है, इसका क्या कारण है?

उत्तर– गौतम! जिसने खूब धर्म आराधना की हो वह मनुष्य सभी को वल्लभ होता है।

24. प्रश्न– भगवन्! सर्वमान्य किस कारण से होता है?

उत्तर– गौतम! परहित कार्य करने से सर्व मान्य होता है।

25. प्रश्न– भगवन्! मनुष्य नीच जाति में किस पाप से पैदा होता है?

उत्तर– गौतम! जाति अहंकार करने से नीच जाति में पैदा होता है।

26. प्रश्न– भगवन्! हीन कुल में किस पाप से पैदा होता है?

उत्तर– गौतम! कुल का अहंकार करने से कुल हीन होता है।

27. प्रश्न– भगवन्! मनुष्य जन्म किस करणी से मिलता है?

उत्तर– गौतम! जो जीव प्रकृति का विनीत हो, भद्रिक हो, अमात्सर्य

भावी हो और विसंवाद से रहित हो, वह जीव मनुष्य जन्म पाता है।

28. प्रश्न- भगवन्! मनुष्य चाकरपने में किस पाप से पैदा होता है?

उत्तर- गौतम! ऐश्वर्यता का अर्थात् मैं अरबपति हूँ, मैं छत्रपति हूँ, मैं पृथ्वीपति हूँ, मैं सार्वभौम नरेन्द्र हूँ इस प्रकार ऐश्वर्यता का घमंड करने से मनुष्य को चाकरपना (दासवृत्ति) प्राप्त होता है।

29. प्रश्न- भगवन्! सुर, असुर, देव, दानव, इन्द्र और नरेन्द्रों के द्वारा मनुष्य पूजनीय किन शुभ कामों से होता है?

उत्तर- गौतम! जिसने मन, वचन और काया से शुद्ध भावना पूर्वक अखण्ड ब्रह्मचर्य पाला हो, वह मनुष्य इन्द्र नरेन्द्रों के द्वारा पूजनीय होता है।

30. प्रश्न- भगवन्! अनायास लक्ष्मी की प्राप्ति किस पुण्य से होती है।

उत्तर- गौतम! गुप्त दान देने से अनायास अखूट लक्ष्मी मिलती है।

-----●-----

2. बारह-भावना का स्वरूप

अनुप्रेक्षा-अर्थात् गहन तत्त्व विचारणा। वस्तु स्वरूप का चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। जिस चिंतन से भव्य साधक अन्त:स्फूर्त हो साध्य तक अनाबाध गति से अग्रसर हो पाए, आत्म साधना की विकट राहों में अम्लान चित्त से प्रगति करता हुआ मंजिलारोही बन जाए, इसी कारण प्राज्ञ पुरुषों ने संवर के उपाय रूप बारह भावनाओं का समीचीन विवेचन किया है वे इस प्रकार हैं-

1. अनित्य भावना, 2. अशरण भावना, 3. संसार भावना, 4. एकत्व भावना, 5. अन्यत्व भावना, 6. अशुचि भावना, 7. आश्रव भावना, 8. संवर भावना, 9. निर्जरा भावना, 10. लोक भावना, 11. बोधि दुर्लभ भावना, 12. धर्म भावना।

1. अनित्य भावना

दोहा- **राजा राणा छत्रपति, हथियन के असवार।**
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार॥

भरत चक्रवर्ती ने भायी

संसार के पदार्थों और जीवन की अनित्यता-अस्थिरता-क्षणभंगुरता का विचार करना अनित्य भावना है। जैसे-जगत् के महल, गढ़, बाग-बगीचा, कुँआ, तालाब, दुकान, पशु-पक्षी, आभूषण आदि समस्त पदार्थ अनित्य हैं। किन्तु हे जीव! तू अज्ञान में फँसकर मूढ़ बनकर इन सब पदार्थों को शाश्वत-सदा काल रहने वाले मान बैठा है। दूसरे जड़ पदार्थों से सजाकर शरीर को और घर को सुन्दर समझ कर तू खुशी से फूला नहीं समाता। किन्तु पर-पदार्थों के द्वारा उत्पन्न हुई शोभा सदा स्थिर नहीं रह सकती। जिन पौद्गलिक भोगोपभोग के साधनों का तू अभिमान करता है और जिन्हें जुटाने में सदा संलग्न रहता है, वे किसी भी क्षण तुझे छोड़ देंगे अथवा तू स्वयं उन्हें छोड़ देने के लिए बाधित होगा। ऐसी अनित्य भावना भरत चक्रवर्ती ने भाई थी।

श्री ऋषभदेवजी के पुत्र और सुमंगला रानी के आत्मज श्री भरत चक्रवर्ती राजा थे। उनकी राजधानी विनीता नगरी थी। एक दिन महाराज

भरतजी सोलह श्रृंगार सजकर अपने काँच के महल में, अपने शरीर का प्रतिबिम्ब देख रहे थे। उसी समय हाथ की अंगुली में से अंगूठी निकलकर नीचे गिर पड़ी। अंगूठी के गिर जाने से अंगुली की शोभा बिगड़ गई। इस घटना पर विचार करते-करते भरतजी को आश्चर्य हुआ। उन्होंने वास्तविकता को पहचानने के लिए शरीर का एक-एक आभूषण उतारना प्रारम्भ किया और फिर वस्त्र भी हटा दिये। अन्त में अपने मन से कहने लगे-देख, तेरा असली स्वरूप तो यह है! सिर्फ पर-पदार्थों के संयोग से वह शोभा थी। मगर वह पर-पदार्थ अर्थात् पुद्गल तो तेरे हैं ही नहीं। पुद्गल विनाशशील हैं और आत्मा अविनाशी है। दोनों की प्रकृति निराली है। ऐसी स्थिति में तेरी उनके साथ प्रीति किस प्रकार टिक सकती है? आत्मन्! देख, सोच, विचार कर अगर तू उन पर-पदार्थों के साथ प्रीति करेगा तो अन्त में अवश्य पछताना पड़ेगा।

भरत चक्रवर्ती के हृदय में इस प्रकार की विचार - तरंगें उत्पन्न हुई और वह विचार इतने गहरे बन गये कि उसी समय उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। उसी समय जैनशासन-रक्षक देवों ने आकर उन्हें साधु का वेष रजोहरण, मुँहपत्ती अर्पित किये। साधु-वेष अंगीकार करके वे सभा में आये और उनका उपदेश सुनकर दस हजार बड़े-बड़े राजा दीक्षा लेने को तैयार हुए। उन सबको दीक्षा प्रदान करके, देश-देश में विहार करके अन्त में समस्त कर्मों का क्षय करके मोक्ष पधारे।

2. अशरण भावना

दोहा- **दल-बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।**
मरती बिरियाँ जीव को, कोई न राखनहार॥२॥

अनाथी मुनि ने भायी

इस प्रकार विचार करना कि- हे जीव! इस संसार में तेरे लिए कोई शरण नहीं है। जितने भी सगे-सम्बन्धी हैं, सब स्वार्थ के साथी हैं। जब उनका स्वार्थ नहीं सधता तो कोई भी सगा नहीं रहता। कर्म का उदय आने पर जब तू दुःख से घिर जायेगा तो कोई भी उस दुःख में हिस्सा नहीं बँटा सकेगा। तेरी व्याकुलता को, तेरे रोग को, तेरी विपदा को कोई भी ग्रहण नहीं

कर सकेगा। यह अशरण भावना है। इस प्रकार अशरण भावना का श्री अनाथी मुनि ने चिन्तन किया था।

एक बार राजगृही नगरी के श्रेणिक राजा वायु-सेवन करने के लिए अपने मंडिकुक्ष नामक उद्यान में गये। उद्यान में एक वृक्ष के नीचे एक मुनि विराजमान थे। अत्यन्त सुन्दर और मनोहर रूप देखकर श्रेणिक चकित रह गये। मुनिराज के पास जाकर श्रेणिक ने उन्हें सादर वन्दना की और उत्कंठा के साथ प्रश्न किया-महात्मन्! आप इस भरे यौवन में साधु क्यों हुए? मुनिराज ने उत्तर दिया - 'राजन्! मैं अनाथ था।

मुनि का उत्तर सुनकर मगधाधिपति श्रेणिक के हृदय में दया उत्पन्न हुई। उसने कहा- आप अनाथ हैं तो मैं आपका नाथ बनूँगा। आप मेरे दरबार में चलिए। मैं अपनी प्यारी कन्या आपको ब्याह दूंगा और राज्य देकर सुखी बना दूंगा।

मुनि ने शांत और गंभीर स्वर में कहा-राजन्! आप स्वयं अनाथ हैं तो दूसरे के नाथ किस प्रकार बन सकते हैं?

मुनि का यह उत्तर सुनकर श्रेणिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा-जिसकी अधीनता में तैंतीस हजार हाथी, इतने ही घोड़े और इतने ही रथ हैं, तैंतीस करोड़ पैदल सैनिक जिसकी आज्ञा शिरोधार्य करते हैं, जिसके पाँच सौ रानियाँ हैं, एक करोड़ इकत्तहर लाख ग्रामों पर जिसका शासन चलता है, उस मगध के स्वामी श्रेणिक को आप अनाथ कहते हैं! क्या इससे आपको मृषावाद का दोष नहीं लगा?

मुनि ने मधुर ध्वनि में कहा - राजन्! आप अनाथ और सनाथ का वास्तविक भेद नहीं समझते। सुनो, मैं अपना वृत्तान्त बतलाता हूँ।

मैं कौशाम्बी नगरी के प्रभूतधन नामक सेठ का पुत्र हूँ। एक बार मेरे शरीर में ऐसी वेदना उत्पन्न हुई, मानो इन्द्र ने वज्र का प्रहार किया हो! अनेक उपाय करने पर भी वह वेदना शान्त नहीं हुई। अपने-अपने शास्त्र में निपुण वैद्य, मंत्र-तंत्रवादी मेरी वेदना मिटाने के लिये आये। औषध, उपचार, पथ्य तथा यत्न करके हार गये, पर रोग नहीं मिटा। मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करने वाले सब स्वजन मौजूद थे। वे सब तन, मन और धन से परिश्रम करके थक गये, पर कोई दु:ख को मिटा नहीं सका। मेरी इच्छा के अनुसार चलने वाली और सदैव मुझे प्रसन्न रखने वाली मेरी पतिव्रता

पत्नी ने मेरी वेदना से दुखी होकर भोजन और स्नान का त्याग कर दिया और दिन-रात चिन्तातुर रहने लगी। वह बहुत चाहती थी कि मैं किसी प्रकार निरोग हो जाऊं, पर वह मेरा दु:ख दूर करने में समर्थ न हो सकी। सभी को थका देखकर मैंने मन ही मन विचार किया कि अगर मैं इस वेदना से छुटकारा पा सकूं और मेरा दु:ख दूर हो जाए तो तुरंत ही मैं आरंभ-परिग्रह के त्यागी, क्षान्त, दान्त मुनिपद को स्वीकार कर लूँगा। इस प्रकार का विचार निश्चित करते ही मेरी समस्त वेदना अदृश्य हो गई। तब कुटुम्बीजनों की आज्ञा लेकर मैंने दीक्षा ग्रहण की और भ्रमण करता-करता यहाँ आया हूँ। यह वृत्तान्त सुनकर राजा श्रेणिक सनाथ-अनाथ का रहस्य समझ गये।

3. संसार भावना

दोहा- **दाम बिना निर्धन दु:खी, तृष्णा वश धनवान।**
कछु न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥३॥
मल्लिनाथ भगवान ने भायी

संसार के स्वरूप का बार-बार चिन्तन करना संसार भावना है। यथा-हे जीव! अनन्त जन्म-मरण करके तू सारे संसार में भटका है। संसार में बाल के अग्र भाग के बराबर भी ऐसी कोई जगह शेष नहीं बची है, जहाँ तूने अनन्त बार जन्म और मरण न किया हो। आत्मन्! तू जगत् के समस्त जीवों के साथ सब प्रकार के संबंध कर चुका है। पहले तू जिसकी माता था, मर कर उसकी स्त्री बना। फिर स्त्री के रुप से मर कर फिर माता बना। इसी प्रकार एक बार जिसका पिता बना था, दूसरी बार उसका पुत्र बना। पुत्र मर कर पिता हुआ। इस तरह सभी जीवों के साथ सभी प्रकार के संबंध तूने अनन्त-अनन्त बार किये हैं। इस तथ्य का भलीभाँति विचार किया जाय तो विदित होगा कि जगत् के सभी जीव सभी के स्वजन हैं।

इस भावना का भगवान मल्लिनाथ के छ: मित्रों ने चिन्तन किया था। मिथिला नगरी में कुम्भ राजा की प्रभावती नामक रानी के उदर से मल्लीकुमारी नामक पुत्री का जन्म हुआ। मल्लीकुमारी तीन ज्ञानों से युक्त

थी। मल्लीकुमारी ने एक मोहन घर (मनोहर बंगला) बनवाया। उसके मध्य भाग में बहुत ही मनोहर अपने शरीर के बराबर सोने की एक पोली पुतली बनवाई। जब मल्लीकुमारी भोजन करती तो ढक्कन हटा कर भोजन का एक कौर उस पुतली में डाल देती और फिर ढक्कन बन्द कर देती। एक बार छः देशों के राजा मल्लीकुमारी की सुन्दरता की प्रशंसा सुनकर, अपनी-अपनी फौजों के साथ मिथिला नगरी में आ धमके। सबने मल्लीकुमारी से अपने-अपने साथ विवाह करने की माँग की।

कुम्भ राजा पशोपेश में पड़ गये। किसके साथ मल्लीकुमारी का ब्याह करूँ और किसकी माँग को अस्वीकार करूँ? पिता को इस संकट में पड़ा देख मल्लीकुमारी ने कहा- पिताजी, आप चिन्ता न करें। मैं छहों राजाओं को समझा दूंगी।

इसके अनन्तर मल्लीकुमारी ने छहों राजाओं को अलग-अलग बुलवाया और मोहनगृह की छः कोठरियों में अलग-अलग बिठलाया। कोठरियों के द्वार बन्द करवा दिये। कोठरियों की जालियों से छहों राजा मध्य भाग में स्थित स्वर्णमय पुतली का रूप देखकर बहुत मोहित हुए। उसी समय मल्लीकुमारी ने पुतली का ढक्कन खोल दिया। ढक्कन खोलते ही बहुत दिनों का सड़ा हुआ भोजन दुर्गन्ध मारने लगा। दुर्गन्ध इतनी तीव्र थी कि उससे छहों राजा घबरा उठे। तब मल्लीकुमारी ने वहाँ पहुँचकर कहा- नरेन्द्रों! जिस पुतली को देखकर आप सब मुग्ध हो रहे थे, उसे देखते ही अब घबरा क्यों रहे हैं? सोने की पुतली में प्रतिदिन एक कौर भोजन डालते रहने से ऐसी बदबू निकली तो मेरे इस शरीर रूपी हाड़, माँस और त्वचा रूपी पुतली में तो प्रतिदिन अनेक कौर अनाज के पड़ते हैं फिर उसमें बदबू न होगी? फिर दुर्गन्ध का भंडार रूप यह थैली देखकर क्यों मोहित होते हो? अपने पिछले भवों को याद करो। पिछले तीसरे भव में मैं राजा थी और आप छः मेरे मित्र थे। हम सातों ने एक साथ दीक्षा धारण की थी। दीक्षा के समय में मैंने धर्म के कार्य में कपट किया था। उसी कपट के कारण मुझे स्त्री रूप में जन्म लेना पड़ा है। बन्धुओं! जरा संसार के स्वरूप का विचार करो। धिक्कार है इस संसार को!

मल्लीकुमारी का यह कथन सुनकर छहों राजाओं को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। छहों को प्रतिबोध प्राप्त हुआ। छहों ने मल्लीकुमारी के साथ दीक्षा अंगीकर की और केवल ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त किया।

4. एकत्व भावना

दोहा- **आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।**
यो कबहू या जीव को, साथी सगो न कोय॥४॥
नमि राजर्षि ने भायी

आत्मा की एकता का, एकाकीपन का चिन्तन करना एकत्व भावना है। यथा - हे आत्मन्! यथार्थ दृष्टि से विचार करे तो प्रतीत होगा कि इस जगत् में कोई किसी का साथी नहीं है। तू अकेला ही आया है और अकेला ही जायेगा। पापों का सेवन करके तूने जो धनोपार्जन किया है, ऐश्वर्य की सामग्री जुटाई है, उसका एक छोटा-सा अंश भी तेरे साथ नहीं जाएगा। पूर्व -कर्म के उदय से तुझे जो परिवार मिला है उसमें से भी परलोक - प्रयाण के समय कोई साथ नहीं देगा। धन धरती में या धरती पर, जहाँ होगा वहीं रह जायेगा। पशु-पक्षी घर में रह जाएँगे। प्राण-प्यारी पत्नी दरवाजे तक और भाई-बन्धु श्मशान तक ही साथ जाएँगे। औरों की तो बात ही क्या है, जिस शरीर को अपना मानकर तूने बड़े प्रेम से पाला है, वह शरीर भी चिता में भस्म हो जायेगा। परलोक में वह भी साथ नहीं जा सकता। निसर्ग का यह अमिट नियम है। इसका उल्लंघन करने की क्षमता किसी में नहीं है। हे जीव! ऐसा समझ कर एकान्त भाव धारण कर। जैसे शरीर और परिवार की सेवा में दत्तचित रहता है, वैसे ही आत्मा की ओर भी कुछ ध्यान दे। आखिर तो आत्मा अकेली ही अन्त में जाने वाली है।

इस प्रकार की भावना राजर्षि नमि ने भाई थी। नमिराज मिथिला नगरी के राजा थे। उनके शरीर में एक बार दाहज्वर का रोग उत्पन्न हो गया। इस रोग की शांति के लिए उनकी 1008 रानियाँ बावन चंदन घिस कर अपने प्रिय पति के शरीर पर लगा रही थीं। रानियों के हाथ में कंकण पहने हुए थे। चंदन घिसते समय कंकणों के घर्षण से खन-खन की जो आवाज हुई उससे नमिराज को और अधिक वेदना मालूम पड़ने लगी। विचक्षण रानियों ने दर्द का कारण समझ लिया और अपने हाथों के कंकण उतार कर रख दिये। सिर्फ सौभाग्य के चिह्न रूप एक कंकण को हाथों में रहने दिया और चन्दन घिसने लगी। कंकणों की आवाज बन्द होने से नमिराज ने पूछा-पहले

बहुत आवाज हो रही थी, अब शांति कैसे मालूम हो रही है? रानियों ने शांति का सच्चा कारण बतला दिया। नमिराज ने विचार किया- जहाँ अनेक हैं वहाँ गड़बड़ होती है, अशांति होती है, कोलाहल होता है। एकत्व में शांति है। इस प्रकार विचार करते-करते उनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने निश्चय किया- मैं इन सब के संयोग में हूँ, बस इसी कारण दु:खी हूँ। संयोग से मुक्त होना ही दु:ख से मुक्त होने का एक मात्र उपाय है। इस रोग के शांत होते ही मैं संसार के समस्त संयोगों का परित्याग करके एकत्व का अवलम्बन लूँगा और शान्ति की खोज करूँगा।

इस प्रकार का निश्चय करते ही नमिराज का रोग शांत हो गया। निद्रा आ गई। निद्रा में नमिराज को स्वप्न आया। स्वप्न में उन्होंने सातवाँ देवलोक देखा। देवलोक देखने के साथ ही उनकी आँख खुल गई। जागने पर चित्त में फिर वही विचार हुआ। उसी समय जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। तत्पश्चात् पुत्र को राज्य देकर, चारित्र अंगीकार करके उन्होंने संयम स्वीकार किया।

श्री नमिराज जैसे उत्तम राजा का वियोग होने के कारण प्रजा बहुत दु:खी हुई। सम्पूर्ण नगर में विलाप का कोलाहल मच गया। उस कोलाहल को जानकर इंद्र को दया आई और नमिराज की दृढ़ता की परीक्षा लेने का भी विचार हुआ। शक्रेन्द्र ने एक ब्राह्मण का रूप धारण किया और उनके पास आया। उसने कहा राजर्षि! ये सब नगर-निवासी क्यों विलाप कर रहे हैं? तब राजर्षि ने उत्तर दिया-मिथिला नगरी में एक सुन्दर वृक्ष था। वह फलों, फूलों, पत्तों और डालियों से समृद्ध था। बहुत से पक्षी इधर-उधर से आकर उस वृक्ष का आश्रय लेते थे और उसके सहारे रात-बसेरा करते थे। एक दिन आँधी आई और वह वृक्ष गिर पड़ा। उसका सिर्फ ठूँठ रह गया। उस समय सब पक्षियों ने अपने-अपने स्वार्थ की बातें स्मरण करके विलाप करना आरम्भ किया। इसी प्रकार इस नगरी के सब लोग अपने-अपने मतलब का वियोग (मेरा वियोग नहीं) देखकर रो रहे हैं। इसी तरह के दस प्रश्न इन्द्र ने पूछे और कुछ समय पर्यन्त गृहस्थी में रहने के लिये प्रेरणा भी की। राजर्षि नमिराज ने सब का सुन्दर समाधान किया। समाधान पाकर इन्द्र ने राजर्षि की स्तुति की, वन्दना की और तदनन्तर वह स्वर्ग में चला गया। श्री नमिराज संयम पालन करके मोक्ष पधारे।

5. अन्यत्व भावना

दोहा- **जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।**
घर संपत्ति प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय॥

मृगापुत्र ने भायी

जगत के समस्त पदार्थों से आत्मा को भिन्न समझकर उस भिन्नता का बार-बार चिन्तन करना अन्यत्व भावना है। जैसे - हे जीव! जगत् में सब स्वार्थी हैं। जब तक उनका मतलब होता है तभी तक सब अपना आदर-सत्कार करते हैं, अपनी आज्ञा में रहते हैं। मतलब पूरा होने पर कोई किसी को नहीं पूछता।

इस प्रकार अन्यत्व भावना का मृगापुत्र ने चिन्तन किया था। सुग्रीव नगर में बलभद्र राजा था। उसकी रानी का नाम मृगावती था और उसके पुत्र का नाम मृगापुत्र था। मृगापुत्र एक बार अपनी सुन्दर और मनोहर स्त्रियों के बीच अपने रत्न जड़ित महल में बैठा हुआ बाजार का ठाठ देख रहा था। संयोगवश उधर से मार्ग से जाते हुए कृशकाय किन्तु तेजस्वी और तपोधनी मुनि पर उसकी दृष्टि पड़ी मुनिराज को देखते ही मृगापुत्र को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसे स्मरण आया कि पूर्वभव में मैंने भी इसी प्रकार का संयम पाला था। यह स्मरण आते ही उसे संयमी बनने की इच्छा हुई। आखिर संयम-ग्रहण करके, जंगल के मृग की भाँति अकेले वन में रहकर संयम की आराधना कर उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

6. अशुचि-भावना

दोहा- **दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।**
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिनगेह॥६॥

सनत्कुमार चक्रवर्ती ने भायी

शरीर की अपवित्रता का विचार करना अशुचि भावना है। यथा-हे जीव! तू अपने शरीर को स्नान-मंजन-लेपन आदि से पवित्र करने की इच्छा रखता है मगर वह कदापि शुद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि वह स्वभाव से ही गंदा है, अशुचिमय है। शरीर की उत्पत्ति पर विचार कर। यह भी देख कि

शरीर के भीतर क्या भरा पड़ा है! प्रथम तो शरीर माता के रक्त और पिता के शुक्र (वीर्य) से बना है। फिर माता के उदर में, उस अशुचि स्थान में, जहाँ पर मल-मूत्र भरा रहता है, इस शरीर की वृद्धि हुई है। फिर अशुचि स्थान से यह बाहर निकलता है। बाहर निकलने के बाद माता का दूध पीकर बड़ा हुआ। माता का दूध भी, जैसे शरीर में रक्त-मांस रहता है वैसे ही रहता है। अब जिस अनाज पर शरीर अवलंबित है, वह भी अपवित्र खेत में उत्पन्न होता है।

इस तरह देखा जाय तो यह शरीर विविध प्रकार की अशुचि और अपवित्रता से, आधि, व्याधि और उपाधि से परिपूर्ण है। जब तक पुण्य का पूरा उदय रहता है तब तक यह सारी अपवित्रता छिपी रहती है और ऊपर से चमड़ी की चादर ढँकी रहती है। पर पाप का उदय आने पर अर्थात् पाप के फल प्रकट होने पर शरीर के बिगड़ने में जरा भी देर नहीं लगती। विवेकशील पुरुषों को शरीर के भीतरी स्वरूप का विचार करना चाहिए।

इस अशुचि-भावना का चिन्तन श्री सनत्कुमार चक्रवर्ती ने किया था। अयोध्यानगरी में अत्यन्त रूपवान् सनत्कुमार नामक चक्रवर्ती थे। एक बार पहले देवलोक के इन्द्र ने उनके रूप की प्रशंसा देव सभा में की। एक देव को प्रशंसा पर विश्वास नहीं हुआ। देव ने वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करके परीक्षा करने का विचार किया और वह चक्रवर्ती के पास आया। सनत्कुमार चक्रवर्ती का रूप-सौन्दर्य देख कर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उस समय चक्रवर्ती स्नान कर रहे थे। उन्होंने ब्राह्मण से कहा- विप्र! कहाँ से आ रहे हो? देव ने कहा- बिल्कुल बचपन में मैंने आपके रूप की प्रशंसा सुनी थी। उस समय चलना आरंभ किया। चलते-चलते मैं इतना बूढ़ा हो गया हूँ, तब कहीं आज आपके दर्शन कर सका हूँ। आज मेरा मनोरथ पूरा हुआ है। ब्राह्मण रूपधारी देव का यह उत्तर सुनकर चक्रवर्ती को अभिमान हुआ। मन में अत्यन्त गर्व धारण करके कहा- 'इस समय मेरा रूप क्या देखते हो! सोलह श्रृंगार सजकर जब मैं राजसभा में अपने समस्त परिवार के साथ बैठूँ तब मेरा रूप देखना। उस समय तुम्हारे आश्चर्य का पार नहीं रहेगा।' इस प्रकार की गर्वयुक्त वाणी कहते ही चक्रवर्ती के रूप में विकार उत्पन्न हो गया- रूप बिगड़ गया। उसके शरीर में कीड़े पड़ गये। अपनी सुन्दर शरीर की अचानक यह अवस्था देखकर चक्रवर्ती को उसी समय वैराग्य हो आया।

उन्होंने विचार किया - जिस शरीर को मैंने अत्युत्तम माल खिलाये, नाना प्रकार के श्रृंगारों से सजाया, अनेक प्रकार के सुख दिये, उसी शरीर ने आज धोखा दिया! जब शरीर की यह दशा है तो कुटुम्ब - परिवार एवं नौकरों आदि का तो कहना ही क्या है। समझता था - मेरा शरीर अन्त तक ऐसा ही बना रहेगा। धिक्कार है इस संसार को! इस प्रकार विचार कर समस्त राज्य-ऋद्धि का परित्याग कर चक्रवर्ती सनत्कुमार ने साधुपद ग्रहण किया। साधु बनने के बाद 700 वर्ष तक वह रोग शरीर में बना रहा। तदनन्तर वे निरोग हुए और केवलज्ञानी होकर मोक्ष पधारे।

7. आस्त्रव भावना

दोहा- **जगवासी घूमे सदा, मोह नींद के जोर।**
सब लूटे नहीं दीसता, कर्म चोर चहुँ और॥७॥

समुद्रपाल मुनि ने भायी

कर्मों के आगमन के कारणों पर और उसके फल पर बार-बार विचार करना आस्त्रव भावना है। यथा-हे जीव! तू अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। इसका मूल कारण आस्त्रव ही है। जीव ने पाप का त्याग तो अनन्त बार किया है किन्तु आस्त्रव के द्वारों को बन्द किये बिना धर्म का पूर्ण फल प्राप्त नहीं हो सकता। आस्त्रव के यों तो बीस भेद हैं, परन्तु उनमें अव्रत प्रधान है। उसमें भी उपभोग (जो वस्तु एक ही बार भोगी जाये, जैसे- आहार आदि), परिभोग (जो वस्तु बार-बार भोगी जा सके जैसे वस्त्र-आभूषण आदि), धन, भूमि आदि की मर्यादा न करना, आशा तृष्णा का निरोध न करना, यह आस्त्रव ही इस भव में महातृष्णा रूपी सागर में गोते खिलाता है। इसी के प्रताप से जीव दुर्गति में जाकर अनन्त काल तक विडम्बनाएँ भोगता है ऐसा जानकर हे जीव! अब आस्त्रव का त्याग कर। व्रत -प्रत्याख्यान को ग्रहण कर। जितना भी शक्य हो, आरम्भ-परिग्रह का त्याग कर।

इस प्रकार की आस्त्रव भावना श्री समुद्रपाल ने भायी थी। चम्पा नगरी में पालित नामक श्रावक का समुद्रपाल नामक एक पुत्र था। वह एक बार अपनी पत्नी के साथ हवेली के झरोखे में बैठा-बैठा नीचे बाजार की शोभा

देख रहा था। उस समय मजबूती के साथ बांधा हुआ एक चोर वधस्थल की ओर ले जाया जा रहा था। समुद्रपाल की दृष्टि उस पर पड़ी। उसे देखकर समुद्रपाल विचार करने लगा- देखो, अशुभ कर्मों का उदय! यह बेचारा चोर भी मेरे जैसा मनुष्य ही है, किन्तु कर्मों के वश होकर इस समय पराधीन हो गया है। जब किसी समय मेरे अशुभ कर्मों का उदय आएगा तो मुझे कौन छोड़ेगा? यह कर्मोदय आस्त्रव पर ही निर्भर है। आस्त्रव को रोक दिया जाय तो बंध न हो और कर्मबंध न हो तो कर्म का उदय भी न हो! अत: मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि कर्म का उदय होने से पहले ही आस्त्रव का क्षय करके सुखी बन जाऊं। इस प्रकार की विचार-श्रेणी पर चढ़ते-चढ़ते समुद्रपाल को वैराग्य हो आया और उन्होंने अन्त में दीक्षा धारण कर ली। घोर तप और संयम का आचरण कर अत्यन्त दुष्कर क्रिया कर कर्मों का समूल क्षय करके मुक्ति प्राप्त की।

8. संवर भावना

दोहा- **मोह नींद जब उपशमे, सद्गुरु देय जगाय।**
कर्म चोर आवत रुके, तब कुछ बने उपाय॥८॥

हरिकेशी मुनि ने भायी

आस्त्रव का रूकना संवर कहलाता है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग से आस्त्रव होता है और इन कारणों का परित्याग करके तप, समिति, गुप्ति, चारित्र आदि का अनुष्ठान करने से संवर होता है। संवर के स्वरूप और कारण आदि का चिन्तन करना संवर भावना है। इसका चिन्तन इस प्रकार किया जाता है :- आस्त्रव ही संसार भ्रमण का प्रधान कारण है और उस आस्त्रव को रोकने का उपाय सिर्फ संवर है। इसलिए मैं समस्त इच्छाओं को रोक कर एकान्त समतारूप धर्म में ही स्थिर होऊँ। इस प्रकार की भावना का श्री हरिकेशी मुनि ने चिन्तन किया था।

हरिकेशी मुनि ने पूर्व भव में जाति का मद किया था। इस मद के प्रभाव से चाण्डाल कुल में उनका जन्म हुआ। उनका बेडौल चेहरा देख कर 'हरिकेशी' नाम रखा गया। हरिकेशी जहाँ कहीं जाते, अपने कुबड़े और बेडौल रूप के कारण सर्वत्र तिरस्कार और उपहास के पात्र बनते। इससे

उकता कर वह आत्मघात करने के लिए तैयार हुए। उसी समय उन्हें एक मुनिराज मिल गये। उन्होंने उपदेश दिया- भाई! मनुष्यभव चिन्तामणि रत्न के समान अनमोल है। आत्मघात करके क्यों इसे वृथा गँवाते हो? इस दुर्लभ जीवन का सदुपयोग क्यों नहीं करते? आत्मघात कर लेने के पश्चात् भी सुखी नहीं हो सकोगे, वरन् दु:खों की वृद्धि ही करोगे। इस प्रकार मुनिराज का उपदेश सुनने से हरिकेशी के चित्त में वैराग्य-भावना उत्पन्न हुई। उन्होंने उन्हीं मुनिराज से दीक्षा ग्रहण की और गुरु को नमस्कार करके मासखमण करने लगे।

हरिकेशी मुनि विहार करते-करते एक बार बनारस नगरी पहुँचे। वहां नगरी से बाहर यक्ष के मन्दिर में ध्यान धारण करके खड़े हो गये। राजा की पुत्री ने यक्ष के मन्दिर में ऐसे कुरूप साधु को देख कर उन पर थूक दिया। थूकते ही राजकुमारी का मुँह टेढ़ा हो गया। जब राजा को इस घटना का पता चला तो ऋषि के शाप से डर कर राजा ने अपनी वह कन्या ध्यानस्थ मुनि को अर्पण कर दी।

हरिकेशी मुनि ध्यान समाप्त करके राजा से कहने लगे -'राजन्! हम ब्रह्मचारी साधु मन से भी स्त्री की इच्छा नहीं करते। यह सुनकर राजा बहुत घबराया। वह सोच विचार में पड़ गया कि अब इस कन्या का क्या किया जाय? आखिर राजा ने पुरोहित को बुलाकर उसकी सम्मति माँगी। पुरोहित ने कहा-तुम्हारी कन्या ऋषि पत्नी है, इसलिए किसी ब्राह्मण को दे दो। भोले राजा ने वह कन्या उसी पुरोहित को ब्याह दी।

पाणिग्रहण के समय एक यज्ञ का आरंभ किया गया। संयोगवश इसी यज्ञस्थान में हरिकेशी मुनि भिक्षा लेने पधारे। बहुत से बालक बेडौल आकृति वाले मुनि को देख कर यज्ञस्थान से बाहर निकले और मुनि को लाठियों और पत्थरों से मारने लगे। तब वह राजकुमारी कहने लगी- मूर्ख बालकों। क्या मौत तुम्हारे सिर पर मंडरा रही है? राजकुमारी ने इतना ही कहा था कि समस्त बालक अचेत होकर जमीन पर गिर पड़े। सब ब्राह्मण घबरा कर दौड़े। उन्होंने बालकों के अपराध के लिए मुनि से क्षमायाचना की। मुनि ने शान्त भाव से कहा -भाईयों! हम साधुओं पर कितना ही दु:ख क्यों न आ पड़े, कोई कितना ही क्यों न सतावे, हम मन से भी किसी का बुरा नहीं सोचते। बालकों को अचेत करने का काम तिन्दुक यक्ष ने किया हो तो ज्ञानी

जाने। तत्पश्चात् ब्राह्मणों ने पूर्ण सद्भावना के साथ मुनि को पारणा कराया। फिर मुनि ने ब्राह्मणों को उपदेश दिया- विप्रों! यह आत्मा अनादि काल से हिंसामय कृत्यों में लगा है। मगर हिंसामय कृत्यों से आत्मा का निस्तार नहीं हो सकता। आप लोगों ने यह जन्म भी इसी प्रकार गँवा दिया। अब हिंसा का त्याग करके सच्चे धर्म के मार्ग पर आओ। विवेक-शक्ति का सदुपयोग करो। अधर्ममय-हिंसामय यज्ञ का त्याग करके सच्चे यज्ञ का स्वरूप समझो। जीव रूपी कुंड में, अशुभ कर्म रूपी ईंधन को तप रूपी अग्नि के द्वारा भस्म करो और पवित्र बनो। तुम इस समय जो यज्ञ कर रहे हो वह तो आस्रव-यज्ञ है, पापबंधन का कारण है। अतः आस्रव-यज्ञ का त्याग करके संवर रूप पवित्र दयामय यज्ञ का अनुष्ठान करो। यही यज्ञ आत्मा को तारने वाला और शरणरूप है। मुनि का यह उपदेश ब्राह्मणों को रुचिकर हुआ और वे हिंसा का त्याग करके धर्मात्मा बने। मुनि विहार करके अन्यत्र चले गये। उन्होंने कर्मों का नाश करके मुक्ति प्राप्त की।

9. निर्जरा भावना

दोहा- **ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर।**
या विधि बिन निकसे नहीं, पैठे पूरब चोर॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच प्रकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार॥९॥

अर्जुन माली ने भायी

कर्मों का आंशिक रूप से क्षय होना निर्जरा है। निर्जरा का प्रधान कारण तप है। इस प्रकार निर्जरा के स्वरूप, कारण आदि का चिन्तन करना निर्जरा-भावना है। उसका चिन्तन इस प्रकार किया जाता है:-

हे जीव! तूने संवर की करणी करके नये आने वाले कर्मों को रोक दिया परंतु पहले बंधे हुए कर्मों का क्षय करने वाली तो निर्जरा ही है। निर्जरा के कारणरूप तप बारह प्रकार के हैं। बारह प्रकार के तप को इस लोक और परलोक के किसी भी सुख या कीर्ति की कामना से रहित होकर केवल मुक्ति की इच्छा से करना चाहिए। ऐसा करने वाले का कल्याण अवश्य होता है। इस निर्जरा भावना का अर्जुन माली ने चिन्तन किया।

राजगृह नगर के निवासी अर्जुन नामक माली की स्त्री बंधुमती अत्यन्त रूपवती थी। बंधुमती का रूप-सौंदर्य देखकर छः लम्पट पुरुष उस पर मोहित हो गये।

एक बार जब अर्जुनमाली उस बगीचे के यक्ष मुद्गरपाणी को नमस्कार कर रहा था, तब उन लम्पट पुरुषों ने आक्रमण करके अर्जुनमाली को बाँध दिया और उसकी पत्नी बंधुमती के साथ व्यभिचार सेवन किया, इस घोरतम अन्याय को देखकर यक्षदेवता ने अर्जुन माली के शरीर में प्रवेश किया और उन छहों लम्पट पुरुषों को तथा बंधुमती को मार डाला। उसके बाद यक्ष ने अर्जुन माली के शरीर में रहकर प्रतिदिन छः पुरुषों और सातवीं स्त्री को मारना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार पाँच मास और तेरह दिन में उसने 1141 मनुष्यों के प्राण ले लिये। राजगृही के निवासियों में बड़ी घबराहट फैल गई और उस तरफ के रास्ते बंद हो गये। इसी समय सौभाग्य से भगवान महावीर स्वामी अपने शिष्यों के साथ वहाँ पधारे और बगीचे में विराजमान हुए।

प्रभु के दर्शन के लिए दृढ़धर्मी सुदर्शन सेठ निडर बनकर निकले। सुदर्शन सेठ नगरी के बाहर निकले ही थे कि अर्जुन अपने हाथ का मुद्गर उछालता-उछालता सामने आया। पर सुदर्शन सेठ का धर्म-तेज देखते ही यक्ष अर्जुनमाली के शरीर में से निकल कर भाग गया। अर्जुन माली बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा। सुदर्शन सेठ अर्जुन माली को भगवान के पास लाये। प्रभु का उपदेश सुनकर अर्जुन माली ने दीक्षा धारण की और बेले-बेले के उपवास शुरू किये।

पारणे के दिन जब अर्जुन मुनि राजगृही नगरी में भिक्षा के लिए जाते तो पूर्व अवस्था में जिन-जिन के कुटुम्बीजनों को मारा था, वे सब उन्हें देखकर खूब मारते थे। फिर भी अर्जुन मुनि समभाव धारण करके सभी वेदनाएँ सहन करते और कहते -मैंने तुम्हारे कुटुम्बी को प्राणहीन कर दिया था, फिर भी तुम मुझे मार-पीट कर ही छोड़ देते हो, मेरे प्राण नहीं लेते यह तुम्हारा मेरे ऊपर महान उपकार है इस प्रकार की महाक्षमा धारण करके मुनि ने घोर तपश्चर्या की और छः मास में ही कर्मों की सेना का दमन करके निर्वाण प्राप्त किया।

10. लोक भावना

दोहा- **चौदह राजु उत्तंग नभ, लोक पुरुष संठाण।**
तामे जीव अनादि से, भरमत है बिन ज्ञान॥१०॥

शिवराजर्षि ने भायी

लोक और लोक के संस्थान (आकार) का चिन्तन करना लोकभावना अथवा लोक संस्थान भावना कहलाती है। इसका चिन्तन इस प्रकार किया जाता है कि आकाश के जिस भाग में छहों द्रव्य रहते हैं वह भाग लोक कहलाता है। उसका आकार एक दूसरे के ऊपर रखे हुए तीन दीपकों के समान है। शिवराजर्षि ने इस लोकभावना का चिन्तन किया था।

बनारस नगरी के बाहर बहुत-से तापस थे। उनमें से घोर तपस्या करने वाले शिवराज नामक एक तापस को विभंगज्ञान उत्पन्न हुआ। विभंगज्ञान से उसने सात द्वीप और सात समुद्र पर्यन्त पृथ्वी देखी। वह लोगों से कहने लगा -मुझे ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हुआ है। ब्रह्मज्ञान के बल से मैं सात द्वीप-समुद्र पर्यन्त पृथ्वी देखता हूँ। बस, इतनी ही बड़ी पृथ्वी है। उसके आगे अन्धकार ही अन्धकार है। एक बार वह नगरी में भिक्षा लेने गया। तब नगर के लोगों ने कहा- श्रमण भगवान महावीर कहते हैं कि असंख्यात द्वीप, असंख्यात समुद्र हैं और शिवराज ऋषि सिर्फ सात द्वीप और सात समुद्र ही बतलाते हैं। इन दोनों कथनों की संगति किस प्रकार हो सकती है? यह बात सुनकर शिवराज ऋषि ने सोचा- मैं श्री महावीर स्वामी के समीप जाकर चर्चा करूँ कि मेरी आँखों देखी (प्रत्यक्ष) बात मिथ्या कैसे हो सकती है? मैं जितनी पृथ्वी देखता हूँ, उससे आगे हो तो वे मुझे बतलावें। इस प्रकार विचार कर ऋषि भगवान महावीर के पास पहुँचे। श्री महावीर भगवान के पास पहुंचते ही ऋषि का विभंगज्ञान, अवधिज्ञान के रूप में परिणित हो गया- ऋषि को सम्यक्त्व प्राप्त हो गया, अब ऋषि सात द्वीप-समुद्र से आगे की कुछ पृथ्वी देखने लगे। उत्तरोत्तर अवधिज्ञान की वृद्धि होने पर उन्होंने असंख्यात द्वीप और समुद्र देखे। तत्काल प्रभु महावीर को नमस्कार करके शिवराज ऋषि भगवान के शिष्य बन गये। अन्त में कर्म-क्षय करके उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया।

11. बोधिबीज भावना

दोहा- **धन जन कंचन राज सुख, सबहि सुलभ कर जान।**
दुर्लभ है संसार में, एक यथारथ ज्ञान॥११॥

ऋषभदेव के 98 पुत्र ने भायी

बोधि अर्थात् सम्यक्त्व के स्वरूप पर, उसके कारणों पर, उसकी महिमा पर और उसके फल पर पुनः पुनः विचार करना बोधिबीज भावना है। उसका चिन्तन इस प्रकार किया जाता है- हे जीव! तेरा निस्तार (मोक्ष) किस करनी से होगा? मोक्ष प्राप्त करने का प्रधान साधन सम्यक्त्व है। इसके अभाव में जीव ऊँची से ऊँची श्रेणी की करनी करके नवग्रैवेयक तक पहुंच चुका मगर उससे कोई भी परिणाम नहीं निकला। आत्मा का तनिक भी कल्याण नहीं हुआ। किन्तु अब सम्यक्त्व प्राप्त करने का अवसर आया है। इसलिए कषाय आदि सम्यक्त्व विरोधी प्रकृतियों का उपशम या क्षय करके सम्यक्त्व रूपी रत्न को प्राप्त कर। सम्यक्त्व डोरा पिरोई हुई सुई के समान है। डोरा सहित सुई कचरे में गुमती नहीं है, इसी प्रकार सम्यग् दृष्टि जीव संसार में गुम नहीं होता और अवश्य निर्वाण प्राप्त करता है। इस प्रकार की बोधिबीज भावना श्री ऋषभदेव के 98 पुत्रों ने भायी थी।

भगवान ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र श्री भरत चक्रवर्ती भरतक्षेत्र के छहों खण्डों पर विजय प्राप्त करके वापिस लौटे। फिर भी चक्ररत्न ने आयुधशाला में प्रवेश नहीं किया। राजपुरोहित से जब इसका कारण पूछा गया तो उसने कहा- छः खण्डों पर विजय प्राप्त करने से चहुँ ओर आपकी यशपताका लहरा रही है, किन्तु आपके 99 भाईयों ने आपकी आज्ञा और अधीनता स्वीकार नहीं की। श्री भरतेश्वर ने तुरन्त दूत भेजकर अपने भाईयों से कहलाया- तुम सब सुखपूर्वक राज्य करो, पर मेरी आज्ञा स्वीकार करो। 99 में से 98 भाई बोले- पिताजी हमें राज्य दे गये हैं, अतएव उन्हीं के पास जाकर हम लोग पूछेंगे। वे जैसा कहेंगे वैसा ही हम करेंगे। ऐसा कहकर 98 पुत्र श्री ऋषभदेव भगवान के पास पहुँचे। उन्होंने भगवान से निवेदन किया - भरत अपनी विशाल ऋद्धि के गर्व में आकर हम लोगों को सता रहा है। अब हमें क्या करना चाहिए? भगवान ऋषभदेव ने कहा- राजपुत्रों!

संबुज्झह किं न बुज्झह, संबोही खलु पेच्च दुल्लहा।

समझो! प्रतिबोध प्राप्त करो। समझते क्यों नही हो? ऐसा राज्य तुम्हें अतीत काल में अनन्त बार प्राप्त हो चुका है पर बोधिबीज सम्यक्त्व की प्राप्ति होना अत्यन्त कठिन है। इसलिए मेरी आज्ञा तो यही है कि तुम लोग सम्यक्त्व और चारित्र को स्वीकार करके मोक्ष-नगरी का महान् और अक्षय राज्य प्राप्त करो। उस राज्य पर भरत चक्रवर्ती का भी जोर नहीं चलेगा। श्री ऋषभदेव भगवान की ऐसी उत्तम बोधदायक और हितकर वाणी सुनकर 98 भाईयों ने एक साथ प्रतिबोध पाया। दीक्षा लेकर, उत्तम संयम का पालन करके, समस्त कर्मों का सम्पूर्ण विनाश करके अन्त में सिद्धि का असीम, अनन्त और अक्षय साम्राज्य प्राप्त किया।

12. धर्म भावना

दोहा- **याचे सुर तरु देय सुख, चिन्तित चिन्ता रैन।**
बिन याचे बिन चिन्तिये, धर्म सकल सुख दैन॥
धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निरवाण।
धर्म पंथ साधे बिना, नर तिर्यंच समान॥

धर्मरूचि अणगार ने भायी

धर्म के स्वरूप और माहात्म्य आदि का चिंतन करना धर्मभावना है। यथा- हे जीव! मनुष्य जन्म की सार्थकता सिर्फ निर्वाण प्राप्त करने में ही है। मनुष्यभव के अतिरिक्त किसी अन्य भव से मोक्ष की प्राप्ति भी नहीं होती। अतएव पूर्वकृत पुण्य के उदय से जिसे मनुष्यभव आदि उत्तम सामग्री उपलब्ध हुई है, उसे धर्म का आचरण करके सफल बनाना चाहिए। कहा भी है-

धर्मोविशेषः खलु मानवानाम्,
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।

पशुओं और मनुष्यों में धर्म का ही अंतर है। जो प्राणी धर्म से हीन हैं वे सब पशुओं के समान हैं। अतएव मनुष्य की मनुष्यता धर्माचरण करने में ही है।

जिनेन्द्र भगवान ने धर्म का मूल दया है, ऐसा फरमाया है। कहा भी है-

दया धर्म का मूल है।

अतएव दयामूलक धर्म का आचरण करके अपने जीवन को सफल बनाना ही मनुष्य का सर्वोत्तम कर्त्तव्य है।

इस धर्म भावना का चिन्तन श्री धर्मरूचि अनगार ने किया था। चम्पानगरी में श्री धर्मरूचि अनगार मासखमण का पारणा करने के निमित्त नागश्री ब्राह्मणी के घर पहुंचे। उस दिन नागश्री ने भूल से कड़वे तूँबे का शाक बनाया था। ब्राह्मणी ने जान-बुझकर वही शाक मुनि को बहरा दिया। मुनि वह शाक ले गये। उपाश्रय में जाकर अपने गुरुजी को दिखलाया। गुरुजी ने कहा- कठोर तपश्चरण करने से तुम्हारा कोठा निर्बल हो गया है। अगर यह विषैला आहार खाओगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी इसलिए इसे ले जाओ और निरवद्य भूमि देखकर परठ दो।

धर्मरुचि अनगार ने ईंटों को पकाने की जगह परीक्षा के लिए उस शाक की एक बूँद पृथ्वी पर डाली। उसी समय अनेक चींटियाँ उस बूँद के पास आ गई और शाक खाकर मर गई। मुनि ने यह देखकर विचार किया- गुरुजी ने फरमाया है कि निरवद्य जगह (जहाँ डालने से कोई जीव मरे नहीं) में इस शाक को परठ दो, मगर यहाँ सिर्फ एक बूँद डालने से इतनी चीटियाँ मर गई और बड़ा अनर्थ हो गया। तो फिर सारा शाक परठने से कितना अनर्थ होगा। इस प्रकार सोचते-सोचते उन्हें विचार आया-ठीक निरवद्य जगह तो मेरा ही पेट है। शरीर तो नाशवान् ही है। यह नाशवान् शरीर अगर जीव रक्षा का निमित्त बन सकता है तो उत्तम है -महान् लाभ का कारण है। इस प्रकार विचार करके उस विषमय शाक को वे स्वयं खा गये। थोड़ी ही देर में सारे शरीर में दाह उत्पन्न हो गया। फिर भी मुनिराज अखण्ड समभाव में स्थिर रहे। आयु पूर्ण करके सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए। अगले भव में कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त करेंगे।

इन बारह भावनाओं में से जिसने एक-एक भावना का ही चिंतन किया, उसका भी परम कल्याण हुआ। तो जो जीव बारह भावनाओं का चिंतन करेगा, अवश्य वह मोक्ष प्राप्त करेगा।

-----●-----

आलोयणा के सुभाषित

1. जो जो पुद्गल फरसना, निश्चय फरसे सोय।
ममता-समता भाव से, करम बंध क्षय होय।।24।।

2. बांध्या सोई भोगवे, कर्म शुभाशुभ भाव।
फल निर्जरा होत है, यह समाधि चित चाव।।25।।

3. बांध्या बिन भुगते नहीं, बिन भुगत्यां न छुड़ाय।
आप ही करता भोगता, आप ही दूर कराय।।26।।

4. पथ कुपथ घट बध करी, रोग हानि वृद्ध थाय।
यूं पुण्य पाप किरिया करी, सुख-दुःख जग में पाय।।27।।

5. सुख दिया सुख होत है, दुःख दियां दुःख होय।
आप हणे नहीं अवर कूं, तो आपको हणे न कोय।।28।।

6. ज्ञान गरीबी गुरु वचन, नरम वचन निर्दोष।
इनको कभी न छोड़िए, श्रद्धा शील संतोष।।29।।

7. सत मत छोड़ो हो नरां, लक्ष्मी चौगुनी होय।
सुख-दुःख रेखा कर्म की, टाली टले न कोय।।30।।

8. गोधन गजधन रत्न धन, कंचन खान सुखान।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूल समान।।31।।

9. शील रतन मोटो रतन, सब रतनां की खान।
तीन लोक की संपदा, रही शील में आन।।32।।

10. शीले सर्प ने आभड़े, शीले शीतल आग।
शीले अरि करि केसरी, भय जावे सब भाग।।33।।

11. शील रतन के पारखी, मीठा बोले बैन।
सब जग से ऊँचा रहे, जो नीचा राखे नैन।।34।।

12. तन कर मन कर वचन कर, देता न काहु दुःख।
कर्म रोग पातक झड़े, देखत वां का मुख।।35।।

णमो सिद्धाणं

श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड बीकानेर

जैन संस्कार पाठ्यक्रम परीक्षा 2011

(प्रश्न-उत्तर पत्र भाग-6) पूर्णांक : 100

सूत्र विभाग-35

प्रश्न 1. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।** 5

1) पुच्छिंस्सु णं (वीरत्थुइ)....................सूत्र का छठा अध्ययन हैं।
2) पुच्छिंस्सु णं में....................के गुणों का गुणगान किया गया है।
3) पुच्छिंस्सु णं में गाथाओं की कुल संख्या.............................है।
4) उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे अध्ययन का नाम....................है।
5) उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे अध्ययन में गाथाओं की कुल संख्या ....है।

प्रश्न 2. **निम्न गाथाओं को पूर्ण कीजिए।** 15

1) अणुतरं ....।
....विसिट्ठे।।
2) गिरिवरे ....।
....पण्णे।।
3) दाणाण ....।
....णायपुत्ते।।
4) कम्म ....।
....पाणिणो।।
5) चउरंगं ....।
....सासए।।

प्रश्न 3. **निम्न शब्दों के अर्थ रिक्त स्थान पर लिखिए।** 5

1) समिक्खयाए ....
2) चक्खु पहेठियस्स ....
3) आसुपण्णे ....
4) महीए मज्झम्मि ठिए ....

5) परमत्थि णाणी .....

प्रश्न 4. **निम्न गाथाओं को पूर्ण करके भावार्थ लिखें।** 10

1) से पण्णया .....।

.....जुइमं।।

भावार्थ .....

.....

2) सोच्चा .....।

.....आगमिस्संति।।

भावार्थ .....

.....

तत्त्व विभाग-25

प्रश्न 1. **निम्न रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये।** 5

1) नैरयिक, देवता, युगलिक .....अवस्था में नहीं मरते।

2) तेउ., वायु एवं 7वीं पृथ्वी के नैरयिक के जीवों की नियमा .....गति।

3) 9वें देवलोक से सर्वार्थसिद्ध देवों की नियमा.....गति।

4) पाँच महाव्रत में.....महाव्रत पालना मुश्किल।

5) छः काया में .....के जीव की रक्षा करना मुश्किल।

प्रश्न 2. **संख्या में उत्तर दीजिए।** 10

1) सातवीं पृथ्वी के नैरयिक की आगति (.....) की और गति (.....) की।

2) दूसरे देवलोक की आगति (.....) की और गति (.....) की।

3) तीन विकलेन्द्रिय में आगति (.....) की और गति (.....) की।

4) खेचर की आगति (.....) की और गति (.....) की।

5) श्रावक की आगति (.....) की और गति (.....) की।

प्रश्न 3. **निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिये।** 10

1) सम्यग्दृष्टि की गति का वर्गीकरण लिखो।

उत्तर ....

2) तिर्यंच पंचेन्द्रिय के 20 भेदों का वर्गीकरण उनके नाम सहित लिखो।

उत्तर ....

3) देवों के 198 भेदों का वर्गीकरण लिखो।

उत्तर ....

4) बा. पृथ्वी, बा. अप्. व प्रत्येक वनस्पति में 243 आगति का वर्गीकरण लिखो।

उत्तर ....

5) दस मुण्डन के नाम लिखो।

उत्तर ....

कथा विभाग-10

प्रश्न 1. **किसने किससे कहा?** 10

1) ''आबाल, वृद्ध सभी जानते हैं कि वमन की हुई वस्तु मनुष्य मात्र के लिए अभक्ष्य होती है''

उत्तर ....

2) ''धिक्कार है तुम्हारे कलंकित जीवन को, ऐसे कुत्सित जीवन से तो तुम्हारा मर जाना ही उत्तम है।''

उत्तर ....

3) ''तुम इस जरा से कष्ट से घबरा गए। तुम अपने पूर्वभव को तो याद करो।''

उत्तर ....

4) ''क्या आप मुझे रोग, जरा और मृत्यु से बचा सकेंगे''

उत्तर ....

5) ''स्वामिन्! ये सभी प्राणी आपकी इस बारात के भोजन के लिये हैं। मृत्यु भय से भयभीत होकर ये चिल्ला रहे हैं।''

उत्तर .....

काव्य विभाग-15

प्रश्न 1. **निम्न काव्यांशों को पूर्ण करो।** 15

1) अर्हन्तो.....।
.....नो मंगलम्।।

2) ब्राह्मी.....।
.....नो मंगलम्।।

3) द्रौपदी.....।
.....एक माला।।

4) जो ज्योति.....।
.....फंसना मत देवाणुप्पिाया।।

5) एक-एक.....।
.....फंसना मत देवाणुप्पिाया।।

सामान्य ज्ञान विभाग-15

प्रश्न 2. **निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिये।** 5

1) चौदह पूर्व का सार क्या है?

उत्तर .....

2) मयूर, सर्प, बिच्छु आदि को मारने से मनुष्य किस रोग वाला होता है?

उत्तर .....

3) सुंदर रूप, लावण्य, चातुर्यता आदि किस शुभ करणी से प्राप्त होती है?

उत्तर .....

4) मनुष्य सर्वमान्य किस कारण से होता है?

उत्तर ....

5) हीन कुल में मनुष्य किस पास से पैदा होता है?

उत्तर ....

प्रश्न 2. **निम्न रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये।** 5

1) अनित्य भावना .... ने भायी थी।

2) अशरण भावना .... ने भायी थी।

3) मृगापुत्र ने .... भावना भायी थी।

4) बोधिबीज भावना .... ने भायी थी।

5) आश्रव भावना .... ने भायी थी।

प्रश्न 3. **निम्न दोहों को पूर्ण कीजिए।** 5

1) राजा राणा..।
....अपनी बार।।

2) जहाँ देह..।
....परिजन लोय।।

3) बांध्या बिन..।
आप ही..।।

4) शील रतन..।
तीन लोक..।।

5) धर्म करत..।
....तिर्यंच समान।।